हिन्दी

साहित्यका सरल इतिहास

ले०—पंडित यदुनन्दन मिश्र एम० ए०

हिन्दी

साहित्यका सरल इतिहास

(हिन्दी साहित्यका सर्वाङ्गसुन्दर संक्षिप्त इतिहास)

लेखक—

पं० यदुनन्दन मिश्र एम० ए०

प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक एजेंसी

२०३, हरिसन रोड,

कलकत्ता

द्वितीय बार } १९५० { मूल्य १) सजिल्द १।=)

* श्रीः *

भूमिका

हिन्दी-साहित्यके पठन-पाठनका प्रबन्ध आजकल बहुतसे विश्वविद्यालयोंमें हो रहा है। हिन्दी-साहित्यके इतिहासकी एक छोटी-सी पुस्तकका अभाव था। इस अभावके दूर करनेके लिये मेरे प्रिय छात्र श्रीमान् यदुनन्दन मिश्रने अपनी "हिन्दी साहित्यका सरल इतिहास" नामक पुस्तकको प्रस्तुत किया है। हिन्दी-साहित्यके कई प्रौढ़ और प्रामाणिक इतिहास तथा संग्रह और समीक्षा ग्रन्थ हैं, पर विद्यार्थियोंके उपयुक्त अच्छे लघु ग्रन्थ नहीं मिलते। मिश्रजीकी इस पुस्तकपर हिन्दीके विशेषज्ञोंने अपनी सम्मति दी है। भाषाकी सरलता तथा वक्तव्यके याथार्थ्य और स्पष्टताके कारण यह पुस्तक मुझे भी सुलिखित मालूम पड़ती है। हिन्दी-साहित्यके प्रचलित मतवाद इस पुस्तकमें रक्खे गये हैं जिनकी आलोचनाकी रीतिमें ग्रन्थकारने कुछ नवीनतायें दिखाई हैं। जैसा लेखकने अपने 'वक्तव्य' में स्वयं कहा है, यह पुस्तक विशेष रूपसे विद्यार्थियोंके ही दृष्टिकोणसे लिखी गई है और सो भी उनकी परीक्षाकी आवश्यकताओंको सामने रख कर। अतः हमें पूर्ण आशा है कि इसके द्वारा स्कूल तथा कालेजके विद्यार्थी लोग लाभ उठा सकेंगे।

—श्रीसुनीति कुमार चाटुर्ज्या।

(एम० ए०, डी० लिट्, लंदन)

दो बातें
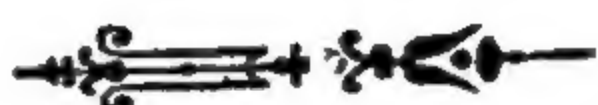
इस पुस्तकके सम्बन्धमें हमारी दो बातें हैं कि यह पुस्तक हिन्दी-साहित्यके इतिहासके सम्बन्धमें है और बेजोड़ है। जो काम बड़ी-बड़ी कई पुस्तकोंके पढ़नेसे होता है वह केवल इस पुस्तकके पढ़नेसे हो जाता है। यह बी० ए०, एम० ए० तथा सम्मेलन परीक्षामें पाठ्य रूपसे स्वीकृत होने योग्य है। इसकी भाषा विशुद्ध परिमार्जित तथा महाविरेदार है। हम लेखक को बधाई देते हैं कि उन्हें इसके लिखनेमें पूरी सफलता मिली है।

आशा है कि वे इसी एक पुस्तकके द्वारा हिन्दीकी दुनियामें आदर-भाजन बने रहेंगे।

—सकलनारायण शर्मा

(काव्य, सांख्य, न्याय आदिके तीर्थ और आचार्य, हिन्दी और फिलासफीके प्रोफेसर कलकत्ता विश्वविद्यालय, तथा प्रसिद्ध पाक्षिक पत्रिका 'शिक्षा' के प्रधान सम्पादक)

हिन्दी-साहित्यका सरल इतिहास

(लेखक—पं० यदुनन्दन जी मिश्र, एम० ए०)

इस छोटीसी पुस्तकमें लेखकने हिन्दी साहित्यके विस्तृत इतिहासपर एक विहङ्गावलोकन किया है। इस पुस्तकका ध्येय साहित्यके निगूढ़ तत्वोंका गम्भीर पर्यवेक्षण नहीं है **वरन अपने नामके ही अनुसार वह तो केवल प्रवेशिकामात्र है।** परन्तु इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि आदिसे अन्त तक लेखकने बड़े सरल ढङ्गसे साहित्यके विकासकी कथाको कहा है। भाषा बड़ी सरल है और सामग्रीका उपयोग भी अच्छे ढङ्गसे किया गया है। हिन्दी साहित्यमें प्रवेश करनेवाले प्रारम्भिक विद्यार्थियों-के लिये यह छोटी-सी पुस्तक निस्सन्देह ही उपयोगी सिद्ध होगी।

—ललिता प्रसाद सुकुल

(हिन्दी-प्रोफेसर कलकत्ता विश्वविद्यालय)

वक्तव्य

यों तो हिन्दी-भाषामें हिन्दी-साहित्यके कई पांडित्य-पूर्ण इतिहास प्रकाशित हो चुके हैं जो अपने ढंगके अनोखे हैं, किन्तु इनके होते हुए भी तुच्छ लेखकने इसपर फिरसे कुछ लिखनेकी जो अनधिकार चेष्टा की है उसके कई कारण हैं :—

१—पूर्व प्रकाशित हिन्दी-साहित्यके प्रायः सभी इतिहास वृहद् हैं ; उनमेंसे कोई भी छः सौ पृष्ठोंसे कम नहीं है। इसलिये हिन्दी-साहित्यको जाननेकी इच्छा रखनेवाले एक साधारण प्रेमीके लिये एक छोटे तथा संक्षिप्त इतिहासकी अत्यन्त आवश्यकता थी।

२—पूर्व प्रकाशित ग्रन्थोंका मूल्य इतना अधिक है कि साधारण निर्धन भारतीय जो हिन्दी-साहित्यसे प्रेम रखता है, उनके खरीदनेमें असमर्थ होनेसे साहित्यिक-ज्ञानसे वञ्चित रह जाता है।

३—हिन्दी-भाषाके इन प्रकाण्ड लेखकोंने जो कुछ लिखा है वह केवल संयुक्त-प्रान्त आगरा व अवध तथा बिहारके विश्व-विद्यालयोंके विद्यार्थियोंके ही लिये ठीक है, बङ्गाल तथा मद्रासके विद्यार्थियोंके लिये वह उपयुक्त नहीं है। यह मेरी कोरी कल्पना ही नहीं है वरन् मैं कुछ हिन्दी-प्रेमी बङ्गाली तथा मद्रासी विद्यार्थियोंसे इस विषयमें बातचीत करके इस निर्णयपर पहुंचा हूं। हिन्दी कांग्रेस द्वारा राष्ट्र-भाषा स्वीकृत हो चुकी है, इसलिये एक ऐसी पुस्तककी अत्यन्त आवश्यकता है जो भारतके प्रत्येक प्रान्तके विद्यार्थियोंको आसानीसे मिल सके और वे हिन्दी प्रेमी विद्यार्थी अपनी राष्ट्र भाषाके विषयमें कुछ जानकारी प्राप्त कर सकें।

४—राय बहादुर अभयचरण मुकुर्जीने अपने एक निबन्धमें लिखा है जिसका भावानुवाद 'बड़े-बड़े शब्द बड़ोंके लिये छोड़ दो' हो सकता है। इसका अर्थ जब हम विस्तार रूपमें लेते हैं तो यह होता है कि जो वस्तु पांडित्य-पूर्ण हो उसे धुरन्धर पण्डितोंके लिये छोड़ देना चाहिये और साधारण व्यक्तिके लिये साधारण दर्जेकी वस्तु ही पर्याप्त होगी। जब वही साधारण व्यक्ति अध्ययन करके उच्च कोटि वालोंकी तरह हो जाय तो वह भी उन्हींकी तरह पांडित्य-पूर्ण ग्रन्थोंका अध्ययन तथा अवलोकन करे। अस्तु यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि साधारणतया यू० पी० और बिहार प्रान्तके विद्यार्थियोंको छोड़कर अन्य प्रान्तोंके विद्यार्थियोंके लिये एक सरल, सुबोध तथा संक्षिप्त हिन्दी-साहित्यका इतिहास लिखा जाय।

इन्हीं उपर्युक्त कुछ मुख्य बातोंको ध्यानमें रखकर इस पुस्तकके लिखनेकी चेष्टा की गई है। इसमें मुझे कहांतक सफलता मिली है, इसका निर्णय सहृदय पाठकगण स्वयं करें।

एक सुन्दर, उपयोगी तथा सरल और संक्षिप्त हिन्दी-साहित्यके इतिहासकी कमी मुझे बहुत खटकती थी। इसके लिये मैं इस सम्बन्धमें सदा कुछ न कुछ सोचा करता था। अन्तमें मुझे स्वतः यह बात सूझ पड़ी कि मैं स्वयं क्यों न प्रयास करूं। मैं विद्यार्थियोंकी कमजोरी और उनकी आवश्यकतायें भलीभांति जानता हूं, इसलिये इतना तो मैं अवश्य कह सकता हूं कि यह पुस्तक विद्यार्थी समाजकी है। मैंने भरसक प्रयत्न किया है कि युनि-वर्सिटीकी परीक्षाके लिये यह पूरी उतरे और अपने परिश्रमको देखते हुए मुझे पूर्ण आशा है कि यह पुस्तक जिनके लिये लिखी गई है उन्हें पूर्ण सन्तोष प्रदान करेगी।

इस पुस्तकके लिखनेमें मुझे हिन्दी-जगतके प्रखर विद्वान तथा उद्भट समालोचक पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, प्रसिद्ध साहित्य सेवी बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, विख्यात हिन्दी प्रेमी 'मिश्रबन्धु', ब्रजभाषाके उदीयमान कवि पं० रामशङ्कर शुक्ल एम० ए०, 'रसाल' तथा प्रसिद्ध विद्वान पं० रामनरेश त्रिपाठी की पुस्तकोंसे पूरी सहायता मिली है, इसलिये हम इन विद्वानोंके विशेष आभारी हैं। हिन्दी भाषाके प्रसिद्ध पंडित श्री प्रो० धीरेन्द्र वर्माके भी हम कृतज्ञ हैं जिनके 'क्लास नोट' से मुझे काफी सहायता मिली है। यह मेरा प्रथम प्रयास है। 'स्खलनं मनुष्याणां धर्मः' को स्मरण कर अपनेको भी उसी कोटिमें पाता हूं जिसमें सारा मानव समाज जकड़ा हुआ है, इसलिये जो साहित्य प्रेमी मेरी भूल चूकको सुझायेंगे आगामी संस्करणमें कृतज्ञता-पूर्वक उचित रीतिसे उनका संशोधन कर दिया जायागा।

सन् सम्बत्के झमेलेमें मैं कुछ समय तक पड़ा रहा, किन्तु अन्तमें यह

निश्चय किया कि "महाजनो गतः येन स पन्थाः" अस्तु इसमें बिक्रमी संवत्का ही प्रयोग किया गया है ।

यह मैं अच्छी तरह जानता हूं कि वर्तमान भारतीय विद्यार्थियोंके लिये सन् ईस्वी (B. C. ; A. D.) स्मरण कराना, विक्रमीय संवत्की अपेक्षा सरल है क्योंकि उनकी आदत ईस्वी सन् याद करनेकी पड़ी हुई है इतना होते हुए भी मैंने सम्वत्सरका प्रयोग एक तो "महाजनो गतः येन स पन्थाः" के कारणसे किया है—और दूसरा कारण यह है कि विक्रमीय संवतमें मुझे राष्ट्रीयताकी विशेष झलक दीख पड़ती है और ईस्वी सन्में पश्चिमीयता की बू आती है । इस कठिनाईको इन दो कारणोंसे मैं दूर न कर सका, इसके लिये पाठक क्षमा करें ।

भाषाके प्रयोगमें मैं किसी मुख्य भाषा या बोलीमें अपनेको बद्ध नहीं रखना चाहता । हमारे विचारसे साहित्यकी गति किसी खास भाषा या बोली से बंधकर रुक जाती है । इसलिये जो शब्द जिस स्थानपर उचित अर्थको प्रकट करता है उसके लेनेमें हमें किसी प्रकारकी हिचक नहीं है । अब इस प्रकारकी भाषाको चाहे आप खड़ी बोली कहें, चाहे ब्रजभाषा, चाहे उर्दू या हिन्दुस्तानी कहें, यह आपका कार्य है आप जानें । हमारा उद्देश्य तो केवल यह है कि हिन्दीके प्रचारके लिये हिन्दी- साहित्यका एक संक्षिप्त तथा सुबोध इतिहास लिखा जाय ।

यहाँ इतना बतला देना आवश्यक है कि पूर्व लिखित इतिहासोंमें प्रायः एक सी बात दिखाई पड़ती है । वास्तवमें ऐसा करनेके लिये वे मजबूर भी थे पिछले दिनों हिन्दी-जगत्में काफी गवेषणा नहीं हुई थी । हां, आजकल इस

क्षेत्रमें लोग काफी परिश्रम कर रहे हैं और दिन प्रति दिन कुछ न कुछ नई चीजें साहित्य प्रेमियोंके सामने आ रही हैं और आशा है कि वे भविष्यमें आती ही रहेंगी। गत वर्षोंके अन्दर जो इधर कुछ छानबीन हुई है उसे भी मैंने विद्यार्थियोंकी जानकारीके लिये लिख दिया है। जो पुस्तककी खास विशेषता है। अन्य किसी भी इतिहासमें ये चीजें शायद ही मिलें।

धन्यवाद

हिन्दी-संसारमें यह मेरी प्रथम कृति है। इसके लिये प्रयास करना भी मेरे लिये असम्भव था। इस समय अपनी स्वाभाविक कमजोरियोंपर मैंने जो विजय प्राप्त की है उसके मुख्य कारण हैं पूज्य प्रो० ललितप्रसादजी सुकुल। यह पुस्तक आपकी ही प्रेरणासे तैयार हुई है। आप मुझे सदा मैदानमें आगे बढ़नेके लिये प्रोत्साहित किया करते थे जैसी कि आपकी खास आदत है। इतना ही नहीं वरन् आप अपने स्वभावजन्य प्रेमसे कभी-कभी यत्र-तत्र संशोधन भी कर देते थे। इसलिये आपको शतशः धन्यवाद है।

आचार्य पं० सकलनारायणजी शर्माको शतशः प्रणाम जिन्होंने अपनी अनुकम्पा तथा कृपासे इधर उधर पन्ना उलटनेका कष्ट उठाया है।

हिन्दी-साहित्य सम्बन्धी हिन्दीमें लिखित पुस्तकों-पर एक दृष्टि :—

हिन्दीमें हिन्दी-साहित्यपर सर्व प्रथम प्रकाश डालनेका श्रेय ठा० शिवसिंह सेंगरको है। इन्होंने प्राचीन भक्ति-पंथकी पुस्तकों तथा अपनी स्वयं जानकारीके आधारपर 'शिवसिह-सरोज' नामका ग्रन्थ वि० सम्वत् १९४० में लिखा। यह पुस्तक इसलिये आदरणीय है कि इसने भविष्यके विद्वानोंके लिए एक पथ तैयार कर दिया। इस पुस्तकको इसकी रचनाशैली तथा अन्य साहित्यिक गुणोंके लिये विशेष महत्त्व नहीं दिया जा सकता। इसमें देश तथा समाजकी परिस्थितियोंपर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला गया है। यदि संक्षिप्त जीवनी साथमें न होती तो इसे केवल कविताओंका संग्रह कह सकते थे।

शिवसिंह-सरोजके पश्चात् हिन्दीके प्रसिद्ध विद्वान मिश्रबन्धुओंने वि० सम्वत् १९७० में 'मिश्रवन्धु-विनोद' नामका हिन्दी साहित्यपर एक वृहत् ग्रन्थ लिखा। यह ग्रन्थ तीन भागोंमें प्रकाशित हुआ है। यह ग्रन्थ इतना बड़ा है कि शायद ही किसी हिन्दी-प्रेमी विद्यार्थीने इसे आदिसे अन्ततक पढ़ा हो। इसमें छोटे मोटे सभी कवियों तथा लेखकोंके नाम आये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ बड़ी छान-बीनके साथ लिखा गया है, किन्तु इतना कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ प्रारम्भिक पाठकोंके चित्तको खींच नहीं सकता। इसके 'स्थूलकाय' तथा इसकी छपाईको देखकर एक प्रकारका भय उत्पन्न होता है। अधिक मूल्य होनेके कारण यह साधारण पाठकोंको कठिनाईसे प्राप्त होता है।

वि० सम्वत् १९८६ में हिन्दीके धुरन्धर विद्वान् तथा समालोचक पं० रामचन्द्र शुक्लने 'हिन्दी-सहित्यका इतिहास' नामक एक अपूर्व ग्रन्थ लिखा। वास्तवमें यह ग्रन्थ सर्वाङ्ग-पूर्ण कहा जा सकता है। इसको रचनाशैली, काल विभाग तथा प्रत्येक विभाग की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियोंपर यथाशक्ति प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया गया है। इसमें प्रत्येक कवि या लेखकके विषयमें कुछ लिखकर उसकी कृतियोंपर समालोचनाके रूपमें दृष्टि डाली गई है। कविकी कविता भी उदाहरण स्वरूप लिखी गई है, जिससे पाठक कविके भावको समझनेमें लेखककी समालोचनासे सहायता न लेकर स्वयं अपनी बुद्धिसे भी काम ले सकता है। यह ढंग बड़ा लाभदायक है। इससे पाठककी स्मरण-शक्तिका विकास होता है।

वि० संवत् १९८७ में बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० ने 'हिन्दी भाषा और साहित्य' नामका एक उत्तम ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थको हम दो भागोंमें विभाजित कर सकते हैं। पहिले भागमें तो हिन्दी-भाषाके विषयमें पांडित्य पूर्ण बातें लिखो गई हैं। दूसरे भागमें साहित्यपर प्रकाश डाला गया है। सचमुच यह ग्रन्थ अपने ढङ्गको अद्वितोय है। इसमें काल विभाग, समय प्रगति, समाजिक, धार्मिक, राजनीतिक अवस्थाओंपर पूर्ण रूपसे प्रकाश डाला गया है। कला तथा विज्ञान सम्बन्धी बातें भी बड़े अच्छे ढङ्गसे लिखी गई हैं। इसमें एक बात खटकती है वह यह है कि कवियोंकी कृतियोंका उदाहरण नहीं है जो कि पाठकोंको अपने स्वाभाविक रस और चमत्कारकी शक्तिसे आकर्षित कर सके। फिर भी यह पाण्डित्य-पूर्ण ग्रन्थ है।

सम्वत् १९८८ में पण्डित रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' एम० ए० ने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' नामका एक वृहद् ग्रन्थ तैयार किया। सम्भवतः यह ग्रन्थ

सब ग्रन्थोंसे मोटा है। इसमें लगभग ७७० पृष्ठ हैं। बड़े परिश्रम तथा खोजके साथ लिखा गया है। किन्तु इतना भारी है कि विद्यार्थियोंको पूर्णरूपसे पढ़नेमें बड़ी कठिनाई प्रतीत होती है। इस महाग्रन्थमें भी वही बात खटकती है जो बाबू श्यामसुन्दरदासके ग्रन्थमें है अर्थात् उदाहरणकी कमी। इसमें सन्देह नहीं कि यदि यह ग्रन्थ उदाहरण सहित लिखा गया होता तो इसकी शक्ल और भी बेढंगी होती। साधारण जानकारीके लिये यह उपयुक्त नहीं है। मूल्य भी ६॥) है, जिससे कठिनाई द्विगुण हो जाती है।

इन पांडित्य-पूर्ण ग्रन्थोंके सिवा दो-तीन छोटी मोटी पुस्तकें और प्रकाशित हुई हैं जो विद्यार्थियोंके लाभकी नहीं हैं। उनके द्वारा इतिहासपर पूरा प्रकाश नहीं पड़ता। इन सब बातोंको देखते हुए कहा जा सकता है कि किसी-न-किसी तरहकी इनमें ऐसी कमी है कि जो साधारण श्रेणीके हिन्दी प्रेमी विद्यार्थीको भी खटकती है। ऐसी कमियोंको दूर करनेके लिये इस पुस्तकमें भरसक प्रयत्न किया गया है। कहांतक हम सफल हुए हैं नहीं कह सकते।

हिन्दी-भाषाकी उत्पत्ति

भाषा—किसी देश या देशके किसी भाग विशेषके जनसाधारणकी बोलीको भाषा कहते हैं। जैसे हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी आदि। जिस भाषाको हम लोग अपने ग्रामोंमें, घरोंमें बोलते हैं उसे बोलचालकी भाषा कहते हैं और जब वही बोलचालकी भाषा व्याकरणके नियमोंसे शुद्ध तथा परिमार्जित हो जाती है और शिक्षितोंके विचारोंमें आदान-प्रदानका मुख्य द्वार होती है तो उसे हम साहित्यिक भाषा कहते हैं। इसीलिये बोलचालकी भाषा तथा साहित्यिक भाषामें बड़ा अन्तर रहता है।

हिन्दी भाषा कब और किस प्रकार पैदा हुई, यह जाननेके लिये हम हिन्दीका सम्बन्ध भारतवर्षकी प्राचीन भाषाओंसे दिखाते हैं।

इस देशका प्राचीनतम ग्रन्थ ऋगवेद है। इसकी भाषाको हम वैदिक भाषा कहते हैं। यह निश्चित है कि उस वैदिक कालमें आदिम आर्योंकी कोई बोलचालकी भाषा थी। कुछ समयके बाद जब आर्य पूर्वकी ओर बढ़ने लगे और भाषाओंका मेल-जोल (सम्बन्ध) बढ़ता गया, उस समय तात्कालीन भाषाका स्वरूप व्याकरणके नियमों द्वारा एक प्रकारसे निश्चित कर दिया गया। इस नियम-बद्ध भाषाका नाम संस्कृत पड़ा। जिसका अर्थ है संस्कार की हुई या परिमार्जित, शुद्ध इत्यादि। अब यह भाषा केवल शिक्षितों और साहित्यिकोंकी भाषा रह गई है। इसीलिये

इसकी गति रुक गई। इसका समय विक्रमीय शताब्दीके ५०० वर्ष पूर्व तक आता है।

वेद कालीन भाषा ही संस्कृतकी जननी कही जा सकती है। अन्य प्रादेशिक या प्रान्तीय बोलियां भी वेद कालीन भाषा हीसे सम्बन्ध रखती हैं। संस्कृत भाषाकी एक अलग सत्ता हो जाने पर प्रान्तीय बोलियां स्वच्छन्द रूपमें हो गईं। अब ये बोलियां जन-साधारणके बोलचालकी स्वाभाविक भाषा रह गईं। इनके स्वाभाविक होनेके कारण ही इनका नाम प्राकृत पड़ा। प्राकृत-काल विक्रमीयाब्दके लगभग ५०० वर्ष पूर्वसे ५०० वर्ष पश्चात् (अर्थात् सम्वत् ५०० के लगभग) तक कहा जा सकता है। इनमें महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और अर्ध मागधी विशेष प्रसिद्ध हैं। पाली भाषा भी प्राकृतके ही अन्दर आती है। जैन तथा बौद्धधर्मका प्रचार इन्हीं प्राकृत भाषाओंमें हुआ था।

जब प्राकृत भी साहित्यक रूप धारण करके केवल पढ़े-लिखे लोगोंकी भाषा रह गई तो साधारण जनताने प्रचलित तथा प्रान्तीय रूपोंको प्रयोगमें लाना शुरू किया। इस बोल-चालकी भाषाको अपभ्रन्श कहते हैं। इसका समय सम्वत् ५०० से १०० तक साधारण रूपसे कहा जा सकता हैं। इसी अपभ्रन्शसे हिन्दी भाषाकी उत्पत्ति हुई है। भारतवर्षकी अन्य आर्य भाषायें भी इसीसे उत्पन्न हुई हैं जैसे बंगाली, आसामी, पंजाबी इत्यादि

कुछ विद्वानोंका कहना है कि अपभ्रंश कोई भाषा नहीं था हिन्दी आदि प्रांतीय भाषा ये प्राकृति हीसे उत्पन्न हुई हैं इस

सिद्धांतके समर्थक डा० क्वीथ हैं किन्तु डा० एस० के० चटर्जी तथा हिन्दीके अन्य विद्वान यह मानते हैं कि अपभ्रंशहीसे हिन्दी पैदा हुई है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मि० के० वी० जायसवालका कहना है कि अपभ्रंश कोई अवस्था नहीं थी। हिन्दी सीधे प्राकृतसे पैदा हुई नैपालमें आपने कुछ खोज की है। उसके आधार पर आप कहते हैं कि हिन्दीमें लिखित बुद्धसिद्धों द्वारा साखी रमैनी मिली है जिनका समय सं० ६५० के लगभग हैं।

आपकी खोजसे एक पद उद्धृत किया जाता है :—

जहिमन पवन न संचरई
रवि शसि नाह पवेश।
तहि वट चित्त विसाम करु
सरहे कहिअ उवेश॥

अर्थ—जहां मन-पवन संचार नहीं करता, जहां रवि शशि-का प्रवेश नहीं है। उसी वाटमें हे चित्त, तू विश्राम कर। सरहने यह उपदेश कहा।

साहित्य

साहित्यकी परिभाषा लिखते समय बहुधा हिन्दीके लेखक अङ्गरेजीसे 'लिटरेचर' (Literature) शब्दके दलदलमें फंस जाते हैं। लिटरेचरका अर्थ सम्प्रति यही लिखा जाता है:— सुन्दर, रसवती, शैलीसे युक्त विद्वानोंकी रचना। इस परिभाषामें 'रचना' शब्द मुख्य प्रतीत होता है। अर्थात् साहित्य वही है जो लिखित हो। यह बात अङ्गरेजी साहित्यके आधारपर ठीक हो

सकती है किन्तु सार्वभौमिक नहीं हो सकती। प्राचीनतम भारतीय साहित्य जो हमें प्राप्त है वह है। वेद पहिले लिखे ही नहीं जाते थे तो वैदिक साहित्य कैसे बन सकता है ? यहांपर यह परिभाषा उपयुक्त नहीं होती इसलिये डा० गङ्गानाथ झा के शब्दोंमें कहा जा सकता है कि साहित्यके अन्दर कथित (व्याख्यान) और लिखित दोनों आ सकते है ।साहित्यका अर्थ है "सहितयोः भावः" (शब्दार्थयोः) अर्थात् **सार्थक शब्दों के द्वारा जो कहा या लिखा जाय वह साहित्य है।**

साहित्यका इतिहास

इतिहास शब्दके सुनते ही यही अर्थ सर्व प्रथम प्रगट होता है कि इसमें राजाओंकी जय-पराजय, संधि-विच्छेद आदिका वर्णन है। देशमें घटित घटनाओंका वर्णन इतिहास है, किन्तु साधारण इतिहास शब्द तथा साहित्यके इतिहासमें आकाश पातालका अन्तर है। साहित्यका इतिहास केवल रचयिताओंका जीवन चरित्र ही नहीं वर्णन करता, किन्तु इसका कार्य कुछ और है।

किसी देशका साहित्य उसके समाजका प्रतिविम्ब है अर्थात् हम किसी देशके साहित्यका अध्ययनकर,उसके समाजके विषय-में पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। समाज और साहित्यका

परस्पर एक अटूट सम्बन्ध है। इसलिये समाजकी पूरी प्रगति (उत्थान, पतन) का चित्र साहित्यमें होना चाहिये। देशके व्यक्तिगत तथा सामूहिक विचारोंका संकलन ही साहित्य है। यह तो हुआ एकांगी वर्णन। अब साहित्यका कर्तव्य समाजकी ओर क्या है, इसे जानना है। साहित्य ही समाजका संचालक होता है, जिस प्रकारका साहित्य होगा उसी प्रकारका समाज बनेगा। एक अश्लील, अनैतिक साहित्य द्वारा सुसमाज-की रचना कदापि नहीं हो सकती। कवि या लेखक अपने विचारोंको सम्पूर्ण वायु-मण्डलमें भर देता है जिससे समाजको खाद्य पदार्थ (ज्ञान) मिलता है।

अस्तु, साहित्यके इतिहासमें हमें यह देखना पड़ता है कि कवि या लेखक समाज या देशके तरह-तरहके आन्दोलनोंसे कितना प्रभावित और उसने उनको कितना प्रभावित किया है।

दूसरीबात जो साहित्यके इतिहास सम्बन्धी जाननेकी है वह है लेखकोंकी तथा उनकी कृतियोंकी जानकारी—लेखक कब पैदा हुआ, कब मृत्युको प्राप्त हुआ, कबसे उसका रचना काल प्रारम्भ हुआ और कब कब उसने मुख्य साहित्यक कार्य किया। कृतियों के विषयमें हमें यह जानना चाहिये कि अमुक कविकी रचना शैली कैसी है, साहित्यके किन किन अंगों (नाटक, उपन्यास, कहानी, समालोचना, निबन्ध तथा गद्य पद्य काव्य)की पूर्तिकी है और उसमें वह कितना सफल हुआ है।

हिन्दी साहित्यका सरल इतिहास

काल-विभाग

हिन्दीका इतिहास कबसे प्रारम्भ होता है, इसपर विद्वानोंकी तरह-तरहकी धारणायें हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इसका प्रारम्भ विक्रमकी आठवीं शताब्दी हीमें हुआ था। इसपर कुछ विद्वान टीका-टिप्पणी करते हैं और कहते हैं कि विक्रमकी सातवीं और आठवीं शताब्दीमें यह अपभ्रंश भाषा थी। हिन्दी उस समयमें नहीं थी। किन्तु अब छान-बीनके प्रश्चात् लोगोंको यह पता चला है कि विक्रमकी आठवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें (सं० ७७२ के लगभग) पुष्य या पुण्ड नामके एक व्यक्तिने अलंकारोंका अनुवाद दोहोंमें किया था। जिनके कुछ उदाहरण प्राप्त हैं। इसके पश्चात् सम्वत् ८६० के लगभगका लिखा हुआ 'खुमान रासो' नामका एक ग्रन्थ मिला है। इसमें महाराणा प्रतापसिंहका भी वर्णन है जिससे इसकी असलियतमें कुछ लोगोंको सन्देह होता है। यह हो सकता है कि महाराज खुमान (चित्तौरके महाराज) की ही प्रशंसामें लिखा गया हो और बादमें धीरे-धीरे

इस ग्रन्थमें कुछ और बातें जोड़ दी गई हों। खुमान नामके तीन राजा चित्तौरमें हुए थे। संभवतः तृतीय खुमानके राज-कालमें यह ग्रन्थ लिखा गया हो। पं० रामचन्द्र शुक्ल लेखकका नाम 'दलपत विजय' बताते हैं। इसके पश्चात् सं० १००० में लिखा हुआ एक 'भगवत्‌गीता' नामक ग्रन्थ पाया जाता है। इसके लेखक भुवाल कवि हैं। *

कुछ भी हो चूंकि सं० १००० वर्षके पूर्वका समय मतमतान्तरसे भरा है। कोई भाषापर सन्देह करता है तो कोई लेखक पर। इसलिये हम हिन्दीका समय विक्रमकी १०५० वीं शताब्दी से वर्तमान कालतक लेंगे।

इस काल-विभागमें हमें पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा किया गया विभाग विशेष रूपसे उपयुक्त प्रतीत होता है। इसलिये हम विशेषतया उन्हींका अनुकरण करेंगे।

१—आदिकाल (वीरगाथा काल सं० १०५०—१३७५)

२—पूर्व मध्य-काल (भक्ति-काल १३७५—१७००

३—उत्तर मध्य-काल (लक्षण-काल १७००—१६००)

४—आधुनिक-काल (गद्य-काल १६००······)

इस नामकरणके विषयमें इतना जान लेना आवश्यक है कि इन काल-विभागोंका नाम ऐसा ही (वीरगाथा काल, भक्ति-काल आदि) क्यों रक्खा गया।

---

* मि० पी० जायसवालकी नई खोजके अनुसार हिन्दी साहित्यका प्रारम्भ सं० ६०० के लगभग है।

प्रत्येक कालमें जो प्रगति या विचारधार विशेष रूपसे प्रचलित थी उसीके आधारपर उसका नाम भी वैसा ही लिखा गया है। जैसे वीरगाथा कालकी रचनायें बहुधा वीरोंके विषयमें हैं। उसमें वीरोंके यश, प्रताप, बाहुबल आदिका वर्णन है। इसका यह अर्थ नहीं कि दूसरे विषय अछूते ही रह गये। दरबारी कवि राजाओंको युद्धमें प्रोत्साहित करते थे। अपनी कवित्व-प्रतिभा द्वारा जीविका चलाते थे और राजाओंका शौर्य्य तथा पराक्रम-वर्णन करते थे। इस तरहके वर्णनको "रासो" कहते थे। इस प्रकार देशमें राष्ट्र प्रेम, त्याग तथा वीरताका प्रचार करते थे। इन 'रासो' ग्रंथोंमें विवाह आदिका भी वर्णन है। विवाहके सम्बन्धमें श्रृंगारिक पद भी रचे जाते थे। इनमें प्रकृति-वर्णन भी पाया जाता है।*

रासोकी भाषा तथा छन्द

रासोकी भाषा विशेष रूपमें अपभ्रंश है। प्राकृतका भी रूप देखनेमें आता है। फारसी भाषाका भी समावेश है। यह भाषा

---

*कुछ विद्वानोंका कहना है कि इन वीर-रसकी रचनाओंका कारण केवल यवनोंकी चढ़ाइयां ही न थीं वरन् कुछ अन्य कारण भी थे। उनका कहना है कि बुन्देलखण्ड विक्रमकी १३ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें यवनोंकी चढ़ाइयोंसे बचा था तिसपर भी 'आल्हा' नामक काव्य रचा गया। इस आक्षेपपर भी हम यही कह सकते हैं कि इसका भी ध्येय वीरोंको उत्तेजित तथा प्रोत्साहित करना ही था। मुसलमानोंकी चढ़ाई न सही तो परस्परकी लड़ाई तो थी ही।

वीर-रसके लिये उपयुक्त है। शब्दोंकी ध्वनि ही भाव तथा रसको प्रकट करती है। ट, ड, न का प्रयोग विशेष है। वास्तवमें ओजस्विनी भाषाके लिये ये अक्षर उपयुक्त भी हैं। पद सुनते ही कान फड़क उठते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है मानो रण-स्थलमें हम स्वयं उपस्थित हैं।

वीर-गाथाकालके ग्रन्थ

१—खुमान रासो

हमने वीर-गाथाकाल १०५० विक्रमीयाब्दसे माना है, इसलिये 'खुमान रासो' इसमें नहीं लिया जा सकता। किंतु यह भी एक वृहद् 'रासो' है इसके विषयमें संक्षिप्त रूपसे हम प्रथमही कुछ कह चुके हैं, इसीलिये यहां उसकी पुनरावृत्ति नहीं करना चाहते।

२—वीसल देव रासो

यह नरपति नाल्हका लिखा हुआ है। यह १०० पृष्ठोंका ग्रंथ है। इसका निर्माण-काल सं० १२१२ होता है। इसमें चार खण्ड हैं।

प्रथम खण्ड—मालवाके राजा भोज परमारका विवाह सांभरके वीसलदेवके यहां होता है।

द्वितीय खण्ड—वीसलदेव उड़ीसापर चढ़ाई करते हैं।

तृतीय खण्ड—रानी राजमतीके विरह तथा राजाका उड़ीसासे लौटनेका वर्णन है।

चतुर्थ खण्ड—भोज अपनी कन्या राजमतीको घर ले जाते हैं। वीसलदेव पुनः जाकर स्त्रीको लाते हैं।

इसकी भाषा मुख्य रूपमें राजस्थानी है। इसमें व्रज भाषा तथा खड़ी बोलीका भी रूप पाया जाता है। इसमें शृंगार-रसकी प्रधानता है। वीर-रस कम है। इस भाषाको 'पिङ्गल' भाषा भी कहते हैं। इसमें व्रज भाषाका समावेश हो चुका था। राजपूतानाकी एक दूसरी भाषा है डिंगल। उससे हमारा सम्बन्ध नहीं है। उदाहरण—

कड़वा बोल न बोलसि नारी। तूमो मेलहसी चित्त विसारी॥
जीभ न जीभ विगोयनो। दवका दाधा कुपली मेलहइ॥
जीभका दाधा नु पांगुरइ। नाल्ह कहइ सुणीजइ सब कोइ॥

३—पृथ्वीराज रासो

जितने 'रासो' प्राप्त हैं उनमें यह वृहत्तम है। इसके रचियता महाकवि चन्दवरदाई हैं। 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य माना जाता है। इसमें कुल ६९ सर्ग हैं और लगभग २५०० पृष्ठ हैं। यह दोहा, छप्पय, तोमर, तोटक इत्यादि छन्दोंमें लिखा गया है।*

*इसमें पृथ्वीराजका पूरा वर्णन दिया गया है। उनका जन्म, दिल्लीमें गोद तथा राज्यकालका पूरा वर्णन है। कन्नौजमें संयुक्ताके विवाहके लिये चढ़ाई आदिका भी विस्तृत उल्लेख है। शृङ्गार तथा वीर-रस मुख्य हैं।

इसके विषयमें कुछ पंक्तियां प्रसिद्ध हैं, जिनके आधारपर साहित्यिकाका कहना है कि 'रासो' का अन्तिम भाग रचयिताके ज्येष्ठ पुत्र 'जल्हन' द्वारा लिखा गया था। दोहा या पद इस प्रकार है:—

पुस्तक जल्हन हत्थ दै, चलि गज्जन नृप काज।

अपिचः—

रघुनाथ चरित हनुमंत कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
प्रथिराज-सुजस कवि चन्द कृत, चंद-नंद उद्धरिय तिमि॥

'पृथ्वीराज रासो, की भाषा प्राकृत तथा अपभ्रंश है। संयुक्ताक्षरोंको भरमार है। इसमें सन्देह नहीं कि भाषा ओजपूर्ण है। कहीं भाषाका वर्तमान रूप भी पाया जाता है। इसकी भाषा देखकर कतिपय विद्वानोंको इसके १३ वीं शताब्दीके होनेमें संदेह होता है। दूसरा सन्देह जो विद्वानोंको होता है वह है सम्वत् का। चंद द्वारा पृथ्वीराजका जन्मकाल सम्वत् १११५में, दिल्ली गोद होना ११२२ में, कन्नौजको प्रस्थान ११५२ में तथा गोरीके साथ युद्ध ११५८ में लिखा है। किन्तु शिलालेखों तथा अन्य प्रामाणिक दान-पत्रोंके संवत् इन सम्वतोंसे भिन्न हैं। कुछ लोगोंकी धारणा है कि इनमें ९० वर्षका जो अन्तर पड़ता है वह पृथ्वीराजके विशेष सम्वत्-कालके कारण है। तीसरी बात इसमें जो सन्देह पैदा करती है वह है इतिहास विरुद्ध घटनाओंका उल्लेख।

इन सब कारणोंको देखकर कुछ लोग कहते हैं कि 'पृथ्वी-

'राज रासो' चन्दवरदाईका बनाया हुआ नहीं है। किसी व्यक्तिने १६ वीं शताब्दीमें लिखकर चन्दवरदाईके नामसे प्रसिद्ध कर दिया है। यह बात कहांतक सत्य है, इसका ठीक-ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता। किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसमें कई प्रकारकी भाषाओंका समावेश है जो सन्देह उत्पन्न करनेके लिये सर्वथा पर्याप्त है।

जीवन-चरित

चन्दवरदाई हिन्दी-साहित्यके ज्ञात कवियोंमें सर्व-प्रथम हमारे सामने महाकविके रूपमें आते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि जिस समय पृथ्वीराजका जन्म अजमेरमें हुआ था उसी समय इनका जन्म लाहौर (पंजाब) में हुआ। इनकी मृत्यु भी पृथ्वी-राजके साथ ही हुई थी। पृथ्वीराजके जन्म-मरणकी तिथि क्रमशः संवत् १२०५ तथा १२४८ हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि चन्दवरदाई भी सं० १२०५ में पैदा हुए और १२४८ में मृत्युको प्राप्त हुए।

चन्दवरदाई जातिके भाट थे और महाराज पृथ्वीराजके-राजकवि तथा अभिन्न मित्र थे। इन्होंने पृथ्वीराजके विषयमें प्रसिद्ध महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की। हिन्दीके प्रसिद्ध साहित्य सेवी "मिश्र-बन्धुओं" द्वारा इन्हें "हिन्दी–नवरत्न" में स्थान मिला है। इससे अधिक इनके महत्त्वका क्या प्रमाण दिया जा सकता है। ये महाकवि आजन्म अपने दयालु राजा पृथ्वी-राजके साथ रहे। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं। इन्होंने

'रासो' की रचना की किन्तु यह इनके विद्वान पुत्र जल्हन द्वारा पूर्ण की गई। जब पृथ्वीराज शहाबुद्दीन ग़ोरीके द्वारा गज़नी लाये गये, और अन्धे करके जेलमें रख दिये गये तब राज-भक्त कवि एवं वीर चन्दवरदाई किसी बहानेसे ग़ोरीके दरबारमें जा पहुंचे। वहांपर उन्होंने ऐसी युक्ति सोची जिससे अन्धे पृथ्वीराजने शब्दबेधी बाण द्वारा ग़ोरीको स्वर्गलोक पहुंचा दिया। अन्तमें भविष्यकी घोर यातनासे बचनेके लिये इन महापुरुषोंने परस्पर शिरच्छेदन कर इस असार संसारको त्याग दिया।

रासोका उदाहरण

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं इनकी कवितामें ओज है, शक्ति है और उत्साह है, उदाहरणमें एक छंद उद्धृत करते हैं।

कवित्त

बज्जिय घोर निसान रान चहुंवान चिहौ दिस।
सकल सूर सामन्त समरि बल जंत्र मंत्र तस॥
उट्ठिराज पृथिराज बाग लग मनो वीर नट।
कढ़त तेग मनो वेग लगत मनो बीज झट्ट घट॥
थकि रहे सूर कौतिग गगन रगन मगन भई श्रोन धर।
हर हरषि वीर जग्गे हुलस हुरब गंरा रङ्गि नव रत्त वर॥८३॥

४—हम्मीर रासो

इस ग्रंथके विषयमें अधिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि

इसकी असली प्रति अप्राप्त है। अनुमानतः सारंगधर नामका विद्वान् जिसने संस्कृतमें हम्मीर काव्य लिखा उसीने इसको भी लिखा। इसका रचना-काल संवत् १३५७ है। यह ग्रंथ महाराज हम्मीरकी प्रशंसामें लिखा गया है।

५—विजयपाल रासो

ग्रन्थमें करौलीके महाराज विजयपालके युद्धका वर्णन है। इसे नल्हसिंह भट्टने संवत १२५५ में लिखा था।

यह तुलनात्मक दृष्टिसे अन्य 'रासो' की अपेक्षा साधारण है।

६—आल्ह खण्ड

यह एक वृहद् ग्रन्थ है जो महोबाके दो विख्यात वीरों (आल्हा-ऊदल) के विषयमें लिखा गया है। इसके रचयिता 'जगनिक' नामके भट्ट हैं। ये कालिंजर (बांदा) के राजा परमालके दरबारमें रहते थे।

आल्हाका स्थान उत्तरी भारतमें रामायण तथा महाभारतके नीचे है। इससे बढ़कर प्रसिद्ध अन्य कोई ग्रन्थ नहीं है। वर्षा-ऋतुमें तो इसकी लाइनें ग्रामीणोंकी जिह्वापर रहती हैं। कोई भी ग्रामीण न होगा जिसको तुलसीकृत रामायणकी चौपाइयोंकी तरह इसके भी दो चार पद याद न हों। यह गीतात्मक प्रबंध काव्य है। इस महाग्रन्थमें जगनिकका लिखा हुआ (original) कितना है और बादमें गानेवालोंसे कितना जोड़ा गया है, कोई

भी नहीं कह सकता। इसकी भाषा भी देहाती है। साहित्यिकों-का ध्यान अभी इसकी ओर बहुत कम गया है। इसके समान श्रोताओंमें ओज पैदा करनेवाला शायद महाभारत ही हो। इसके गानेका ढङ्ग भी निराला है। 'आल्हा' गानेके लिये एक ढोल (drum) काफी है। आवाज़ सुनते ही सैकड़ोंकी भीड़ मिनट भरमें एकत्रित हो जाती है।

उदाहरण—

रावण और चन्द्ररायकी तुलना

जैसे रावण गढ़लंकामें,
वैसे वीर चन्दराराय।
उनकर कोट बनी सोनेकी,
इनके रहि,पारसकी खानि॥

यह वर्तमान आल्हाकी भाषा है। इससे पता चलता है कि प्राचीन पुस्तकका पता नहीं। उसकी भाषा और आजकी भाषामें जमीन आसमानका अन्तर है। वर्तमान आल्हासे केवल इतना ही पता चल सकता है कि कथाका मुख्य आधार पुराना आल्ह खण्ड है।

अन्य कवि

अमीर खुसरो*

हम काल-विभागके वर्णनमें कह चुके हैं कि यह कोई खास बात नहीं कि अमुक काल (जैसे वीरगाथा काल) में उसी

* कुछ विद्वानोंका कहना है कि खुसरोने हिन्दीमें कुछ नहीं लिखा था। बादमें किसीने लिखकर उनके नामसे प्रसिद्ध कर दिया।

कालकी विचारधाराके अनुसार ही कविता हो। वीरगाथा कालमें एक ओर तो राज कवि और बन्दीजन वीररससे भरी हुई कविताओंकी रचना करते थे, दूसरी ओर दिल्लीके मुसलमान कवि अमीर खुसरो अपनी शृङ्गारमयी रचनासे आस-पासकी जनताको आकर्षित कर रहे थे। इस कविने गयासउद्दीन बलबनसे लेकर खिलजी वंशके बादशाहों तकका राजत्व काल देखा। सम्भवतः इनका रचना काल सम्वत् १३४० के लगभग है। इनकी मुकरनी और पहेलियां प्रसिद्ध हैं।

इनकी कृतियोंमें हम सर्व प्रथम खड़ी बोलीका रूप पाते हैं। वर्तमान कालमें जब कि 'खड़ी बोली' का साम्राज्य चारों ओर दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा है, कवि लोग इन्हें बड़ी श्रद्धा की नजरसे देखते हैं। बोल-चालकी भाषाका अच्छा समावेश इनमें देखा जाता है।

मन मोहित करनेवाली कुछ लाइनोंको हम यहां उद्धृत करते हैं।

एक नारने अचरज किया। सांप मारि पिंजरेमें दिया।
जों जों सांप तालको खाए। सूखे ताल सांप मर जाए॥[दियाबत्ती
एक नार दोको ले बैठी। टेढ़ी होके बिलमें पैठी।
जिसके पैठे उसे सुहाय। खुसरो उसके बलबल जाय॥[पायजामा

कितनी मिली-जुली हिन्दी है। इसकी तुलना राजकवियोंकी भाषासे स्वयं पाठक करें।

विद्यापति ठाकुर

(मैथिल-कोकिल)

इनके विषयमें कुछ कहनेके पूर्व इतना कहना आवश्यक है कि यद्यपि ये सम्वत् १४६० में तिरहुतमें थे फिर भी इन्हें वीरगाथा कालमें क्यों रखा गया।

इसमें सन्देह नहीं कि इनका जीवनकाल १५ वीं शताब्दीमें था। इसलिये इनकी गणना भक्ति-कालके कवियोंमें होनी चाहिये। इनकी रचना देखनेसे हमें पता चलता है कि एक ओर तो ये वीरगाथा कालके कवियोंकी तरह राज-प्रशंसामें लगे थे और दूसरी ओर जयदेवका आदर्श लेकर भगवान कृष्णकी मधुर तानमें मस्त थे। ऐसी अवस्था असमंजसमें डालनेवाली ज़रूर है किन्तु इसको देखते हुए भी, इनमें दरबारी बू देखकर हम इन्हें वीरगाथा कालमें ही रखते हैं।

जीवन-चरित

इनका जन्म तिरहुतके विस्पी ग्राममें हुआ था। ये जातिके मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम गणपति ठाकुर था। सम्वत् १४६० में ये तिरहुतके राजा शिवसिंहके दरबारमें थे। इन्होंने राजा तथा लखिमा रानीके प्रेमका वर्णन अनूठे ढंगसे शृङ्गारिक भाषामें किया है। कृष्ण-प्रेमपर भी इनके पद मनमोहक हैं। इनके पदोंमें इतना आनन्द मिलता है कि ये "मैथिल-

कोकिल" के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके पदोंमें संयोग और वियोग दोनों ही तरहके शृङ्गार रसकी अच्छी लड़ियां पिरोई गई हैं।

इनकी भाषामें हिन्दी, मैथिली तथा बंगला सबका पुट है। बंगला शब्दोंके कारण बंगाली लोग इन्हें बंगाली कवि मानते हैं जो सर्वथा असंगत है। कोई हिन्दीका कितना ही विद्वान् क्यों न हो, हम शर्त लगाकर कह सकते हैं कि बंगलाका अर्थ समझना उसके लिये सर्वथा दुष्कर होगा। किन्तु साधारण हिन्दीका ज्ञान रखनेवालेको भी इनके पद सरस तथा सुबोध मालूम होते हैं। हम इन्हें किसी तरह बंगला भाषाका कवि नहीं कह सकते। यह दूसरी बात है कि बंग प्रान्तके सहयोगसे इनमें बंगलाकी भी पुट है। कुछ पदोंका नमूना देखिये—

सरसिज बिनु सर, सर बिनु सरसिज, की सरसिज बिनुसूरे।
यौबन बिनु तन, तन बिनु यौवन, की यौबन पिय दूरे॥

सखि हे मोर बड़ दैव विरोधी॥

सरस बसन्त समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे।
सपनहु रूप वचन यक भाषिय मुखसे दुरि करु चीरे॥
तोहर बदन सम चांद होअथि नहिं जैयो जतन बिह देला।
कैबेरि काटि बनावल नव कय तैयो तुलित नहिं भेला॥
लोचन तूअ कमल नहिं भैसक से जग के नहिं जाने।
से फिर जाय लुकैवह जलभय पंकज निज अपमाने॥
भनहि विद्यापति सुनवर जौवित ई सभ लछमि समाने।
राजा शिवसिंह रूपनारायन लखिमा देइ प्रतिभाने॥

देखिये व्रजके कृष्ण भक्त कवियोंके पहिले ही आप कृष्ण-भक्तिकी कैसी अनुपम धारा बहाते हैं—

मधुपुर मोहन गेल रे मोरा बिहरत छाती।
गोपी सकल बिसरलनि रे जत छिल अहिवात॥
सुतिल छलहुं अपन गृह रे निन्दइ गेलउ सपनाइ।
करसों छुटल परसमनि रे कोन गेल अपनाइ॥
कत कहबो कत सुमिरब रे हम भरिय गराणी।
आनक धनसो धनवन्ति रे कुबजा भेल राणी॥
गोकुल चान चकोरल रे चोरी गेल चन्दा।
बिछुड़ चलिल दुहू जोड़ी रे जीव इह गेल धन्दा॥
काके भाष निज भाषहु रे पहुआ ओत मोरा।
क्षीर खांड़ भोजन देब रे भरि कनक कटोरा॥
भनहिं विद्यापति गाओल रे धैरज धर नारी।
गोकुल हायत सुहाओन रे फेरि मिलत मुरारी।

भक्ति-काल

सम्वत् १३७५—१७००

साधारण परिचय

समय सदा एक सा नहीं रहता। आज जिसका उत्थान है कल उसका पतन है। कौन जानता था कि जो हिन्दू-साम्राज्य जगत् प्रसिद्ध था, जिसके बल, बुद्धि, विद्या, वैभवकी बराबरी करनेवाला संसारमें कोई नहीं था, वही भारत वि० की १००० शताब्दीसे आज पर्यन्त दर दर फिरेगा और उसके नौनिहाल प्यारे बच्चे बिना दाना तड़प-तड़पकर प्राण छोड़ेंगे ? कौन जानता था कि जो गऊ हिन्दू मात्रकी पूज्य माता थी वह यवनोंका भोज्य पदार्थ बनेगी ? कौन जानता था कि सोमनाथ, काशी, मथुरा, प्रयागके देव मन्दिर तोड़ दिये जायंगे और उनके स्थानमें मसजिदें तैयार होंगी। कहनेका तात्पर्य यह है कि ज्यों-ज्यों मुसलमानोंका साम्राज्य बढ़ता गया और उनकी छल-नीति सफल होती गई त्यों-त्यों भारत नीचेकी ओर गिरता गया।

विक्रमकी १५ वीं शताब्दीसे लेकर १७ वीं शताब्दीतक देशमें केवल निराशा, दुःख और भयका ही प्राबल्य था। बेचारी हिन्दू जनता त्राहि-त्राहि मचा रही थी। वीर क्षत्रिय राजा अब नाम-मात्रके राजा थे। परतन्त्र सिंहकी तरह वे जंजीरमें बंधे थे।

न उनका अब जोर और प्रताप था और न उनकी प्रशंसा करनेवाले राज-कवि या भाट ही थे ।

हिन्दू-वर्ग यवनोंके नीचे रहकर जीवन-यातना भोग रहा था। हिन्दू-मुसलमानका वैमनस्य भी दिन-दिन बढ़ता गया जो स्वाभाविक ही था। समाजका भी पतन हो चुका था। छूत-अछूतका भेद, ऊँच-नीचका विचार तथा स्त्री-स्वतन्त्रता आदिका अपहरण जोरोंपर था।

ऐसी सामाजिक तथा राजनीतिक अवस्थामें साधारण जनताके संतोषका आधार केवल ईश्वरकी कृपा ही थी। लोगों-का ध्यान प्रभुके पादपद्मोंकी ओर झुका और निःसन्देह उसके द्वारा उन्हें एक अपूर्व शान्ति मिली। भक्त लोग अपना-अपना राग अलापने लगे। इन लोगोंने मैदानमें आकर बुराइयोंको दूर कर एक शान्तिमय भविष्य राज्यकी आशा लोगोंमें पैदा की। गोस्वामी तुलसीदासजी दुःखी प्रजाको कैसा आश्वासन देते हैं:—

मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम शकुन शुभ होई॥

इन भक्तोंमें कई श्रेणियां थीं। कोई तो निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करता था, कोई सगुण रूपमें भगवानकी पाद-पूजा करता था, इनके आराध्यदेव राम, कृष्ण थे। इन दो श्रेणियोंके साथ ही हमें एक तीसरी श्रेणी मुसलमानोंकी भी दिखाई पड़ती है। इन लोगोंको हम निर्गुणोंकी श्रेणीमें ला सकते हैं। कभी-कभी ये लोग ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो सगुणोपासक हैं।

इन तरह-तरहके पंथोंके चलानेवालेलोग प्रायः कवि और उच्च

कोटिके महात्मा होते थे। इनकी कृतियां साहित्यको धनवान बनानेके ध्येयसे नहीं लिखी गई थीं वरन धर्म-प्रचारके लिये लिखी गई थीं। इनकी भाषा ब्रज और अवधीके मेल-जोलसे बनी है। कुछ लोगोंकी कृतियां शुद्ध ब्रज-भाषामें हैं और कुछ लोगोंकी शुद्ध अवधीमें हैं।

गुणके अनुसार इन तीन प्रकारके कवियोंको हम संत-कवि, प्रेम-कवि और भक्त-कविका नाम दे सकते हैं। इसीके अनुसार हम सबका संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

निर्गुण-पन्थ

सन्तकवि

महात्मा कबीरदास

गोस्वामी तुलसीदास और सूरदासके बाद यदि कोई तीसरा महात्मा जन-साधारणमें प्रसिद्ध है तो वह हैं महात्मा कबीर दास। इनके जन्मके विषयमें तरह-तरहकी कथाएं प्रचलित हैं। कहा जाता है कि स्वामी रामानन्दके समयमें (रामानन्दका जन्म संवत् १४५५) काशीमें लहरताराके पास एक नव-जात शिशु पड़ा था। लोग कहते हैं कि यह एक विधवा ब्राह्मणीके गर्भसे पैदा हुआ था, जिसकी माँने जाति-भयसे उसे फेंक दिया था। संयोगसे नीरू नामका एक जुलाहा अपनी स्त्री नीमाके साथ जा रहा था, निस्सन्तान होनेके कारण प्रेमवश उसने बालकको उठा लिया और उसका पालन-पोषण किया। यही लड़का भविष्यमें महात्मा कबीर हुआ। उनकी जन्म-तिथिका ठीक-ठीक पता नहीं है। कबीर-पंथी लोग इनका जन्म-संवत् १२०५ और मृत्यु १५०५ मानते हैं। विद्वानोंकी धारणा है कि इनका जन्म-संवत् १४५२ में हुआ था। कुछ विद्वान इनका जन्म-संवत् १४७५ मानते हैं, और यही ठीक भी कहा जा सकता है, क्योंकि यदि हम इनका जन्म संवत् १४५५ मानते हैं तो यह

स्वामी रामानन्दके समवयस्क होते हैं; और स्वामीजी इनके गुरु थे। इसलिये यहांपर यह बात खटकती है कि गुरु चेला एक अवस्थाके हों। इनका जन्म सं० १४७५ में मान लेनेसे स्वामीजी अवस्थामें विशेष बड़े ठहरते हैं। इन बातोंका विचार कर जन्म-सं० १४७५ ही उपयुक्त होता है।

कबीर-पंथी लोग तो इन्हें सीधा आकाशसे उतरा हुआ बतलाते हैं। उनका कहना है कि कबीर साहब मनुष्योंको भवसागरसे पार करनेके लिये लहरताराके पास उतरे थे; और वहीपर नीरूने उन्हें पाया था।

ये स्वामी रामानन्दके चेले थे। इसके विषयमें एक कहावत भी प्रसिद्ध है।

प्रातःकाल नित्यही स्वामी रामानन्दजी गंगास्नान करने जाते थे। एक समय अन्धेरेमें सीढ़ीसे उतरते समय उनका पांव कबीरपर पड़ा जिससे वे चौंककर पीछे हट गये और कहने लगे "बेटा, राम राम कह" बस यही राम नाम मंत्र कबीरका आधार था। किन्तु कबीरके राम और दाशरथि राममें बड़ा अन्तर है। कबीरके राम निर्गुण थे। इनके विषयमें इतना तो निश्चित है कि ये जन्मसे ब्राह्मण थे और स्वामी रामानन्दके चेले थे और काशीमें पैदा हुए थे। जैसा कि वे स्वयं स्वीकार करते हैं:-

काशीका मैं बासी बाभन, नाम मेरा परवीना।
एक बार हरिनाम बिसारा, पकरि जुलाहा कीन्हा॥
मेरे कौन तनेगा ताना।

और भी—

काशीमें हम प्रगट भए हैं रामानन्द चेताए।

कबीर साहब पढ़े-लिखे नहीं थे जैसा कि स्वयं वे कहते हैं, "मसि कागद छूआ नहीं"। इसमें सन्देह नहीं कि यह बहुश्रुत थे। सतसंगकी कृपाका फल है जो इनकी कृतियोंमें हम स्वच्छ भावनाओंका समावेश पाते हैं।

इनकी कृतियां साखी, शब्द, रमैनीके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनकी भाषामें खड़ी बोली, अवधी, उर्दू, बिहारीकी खिचड़ी मिलती है। भाषा कहीं-कहीं गंवारू हो गई है। इनमें स्पष्ट-वादिता तो छलकती रहती है। जो कुछ इन्होंने कहा है, वह हृदयकी सच्ची अनुभूति है।

धार्मिक विचार तो इनके विचित्र थे। वाह्याडम्बरको घृणा-की दृष्टिसे देखते थे। मसजिद, मन्दिर, कुरान, वेद, पुराण सब को खोटी-खरी सुनाते थे। जाति-पांतिके कट्टर विरोधी थे। सम्भवतः इनके सफल न होनेका कारण यही था कि ये महाशय सबके विरोधी थे। जो इन्हें सत्य प्रतीत होता था उसके कहनेमें ज़रा भी नहीं हिचकते थे। शिक्षित समाजपर इनका प्रभाव बहुत कम पड़ा। शूद्र लोग ही (चमार, धुनिया आदि) इनके चेले हुए। ये कट्टर अद्वैत वादी थे। उदाहरणके लिये कुछ लाइनें उद्धृत की जाती हैं:—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पांय।

बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दिया बताय।

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुषकी जात।
देखत ही छिप जायगी, ज्यों तारा परभात॥

निर्गुण ब्रह्मका वर्णन

पण्डित मिथ्या करहु विचारा। ना वह सृष्टि न सिरजन हारा॥
जोति सरूप काल नहिं उहवां। वचन न आहि सरीरा॥

इनकी उलटवांसी भी प्रसिद्ध है

गाय तो नाहरको धरि खायो, हरिना खायो चीता।

वास्तवमें बात यह है कि शेर गायको मारता है और चीता हरिणको किन्तु यहांपर बात उलटी है।

धर्मदास

इनकी जन्म-तिथिके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता। यह बांधवगढ़के निवासी और जातिके बनिया थे। बाल्यकाल ही से इनके हृदयमें प्रेम, भक्ति, दयाका भाव उत्पन्न हो चुका था। ये कबीरदासके मुख्य शिष्य थे। आपने कबीरवाणीका सम्वत् १५२१ में संग्रह किया था। सम्वत् १५७५ में आप कबीरकी गद्दी के अधिकारी हुए।

इनकी रचनाएं कबीरकी अपेक्षा सरल एवं सुबोध हैं। इनमें कबीरकी कर्कशता और रूखापन नहीं है। खण्डन-मण्डनसे विशेष सम्बन्ध नहीं रखते थे।

इनका एक पद देखिये—

झरि लागै महलिया गगन घहराय।
खन गरजै, खन बिजुली चमकै, लहरि उठै, शोभा बरनि न जाय।
सुन्न महलमें अमृत बरसै प्रेम अनन्द ह्वै साधु नहाय॥
खुली केवरिया, मिटी अंधियरिया, धनिसतगुरु जिन दिया लखाय।
धरमदास बिनवै करजोरी, सतगुरु चरणमें रहत समाय॥

गुरु नानक

पूर्णिमाके दिन जन्म लेनेवाले इस महात्माकी कीर्ति-कौमुदी सदा इस संसारमें प्रकाशित रहेगी। प्रसिद्ध सिख मतके प्रवर्तक इस विख्यात 'गुरु' का जन्म सम्वत् १५२६ में लाहौर जिलेके अन्तर्गत तिलवण्डी ग्राममें हुआ था। इनके पिताका नाम कालूचन्द खत्री था। नानक साहब बाल्यकाल हीसे साधु स्वभावके थे। इनका विवाह सम्वत् १५५५ में हुआ था। इनके दो पुत्र थे। उनका नाम श्रीचन्द और लक्ष्मीचंद था। व्यवसाय करनेमें इनकी तबीयत नहीं लगती थी। घण्टों एकान्तवास करते थे। देवी-देवता नहीं मानते थे। एक ईश्वरको मानते थे। घर बार छोड़कर इन्होंने देशाटन खूब किया और खूब ज्ञान भी प्राप्त किया।

इनके भजनोंका संग्रह 'ग्रन्थ-साहब' में किया गया है। इनकी भाषा पंजाबी, ब्रज और खड़ी बोलीसे मिली हुई है। इनके

भाव सीधे और सरल होते थे। कबीरकी चाल इनमें छू तक नहीं गई। इनकी मृत्यु १५८६ में हुई।

उदाहरण—

काहे रे बन खोजत जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा तोही संग समाई॥
पुष्प मध्य ज्यों बास करत है मुकर माहिं जस छाई।
तैसे ही हरि बसे निरन्तर घर ही खोजो भाई॥
बाहर भीतर एकै जानो यह गुरु ज्ञान बताई।
जन 'नानक' बिन आपा चीन्हे मिटै न भ्रमकी काई॥

* * * *

जागो रे जिन जागता, अब जागनिकी वारि।
फेरि कि जागो 'नानका', जब सोवउ पांव पसारि॥
मित्रां, दोस्त, माल, धन, छांड़ि चले अति भाइ।
संगि न कोई 'नानका', उह हंस अकेला जाइ॥

दादूदयाल

कबीर मतानुयायी तथा प्रसिद्ध दादूपंथके प्रवर्तक दादूदयालजी का जन्म गुजरातमें (अहमदाबाद) सं० १६०१ में हुआ था। इनकी जाति क्या थी इसमें मतभेद है। कोई इन्हें ब्राह्मण कहता है, कोई मोची या धुनिया। इनके विषयमें कबीर-जन्मसे मिलती जुलती कथा है। दादूपंथी लोग कहते हैं कि दादूदयाल एक बच्चेके रूपमें साबरमती नदीमें बहते हुए एक नागर ब्राह्मणको मिले थे। बादमें यही महात्मा हुए। इनके गुरुके विषयमें कुछ पता नहीं, किंतु इनके पदोंमें कबीर साहबका नाम आता है। इससे इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि यह महात्मा कबीर के अनुयायी थे।

इनके भजन बड़े रोचक हैं। उनमें सरलता है। कबीरकी भांति कटुता नहीं है। इनकी भाषा पश्चिमी हिन्दी है। खड़ी बोली-का विशेष प्रयोग पाया जाता है। राजस्थानीका भी काफी समावेश है। कबीरकी तरह पूरबी भाषा नहीं इस्तेमाल की गई है। अरबी फ़ारसीके भी काफ़ी शब्द मिलते हैं।

इनकी मृत्यु सं० १६६० में जयपुरसे २० मीलकी दूरीपर नरानाके पास एक पहाड़ी पर हुई। इनके अन्तिम दिवस यहीं बीते थे। कबीरपंथीकी तरह दादूपंथी तिलक और कण्ठीका प्रयोग नहीं करते। हाथमें एक सुमिरिनी (माला) रहती है।

इनके कुछ पदोंका उदाहरण

घीव-दूधमें रमि रह्या व्यापक सबही ठौर।
दादू बकता बहुत है, मथि काढ़े ते और॥
दादू नीको नाम है, तीन लोक तत्सार।
रात दिवस रटिबो करो, रे मन यही विचार॥
हुसियार रहो मन मारैगा, साईं सतगुरु तारैगा।
मायाका सुख भावै, मूरिख मन बौरावै रे॥
झूठ साच करि जाना, इन्द्री स्वाद भुलाना रे।
सुखकौं सुख करि मानै, काल झाल नहिं जानै रे॥
दादू कहि समझावै, यह अवसर बहुरि न पावै रे॥

सुन्दर दास

संत संप्रदायके सर्वश्रेष्ठ विद्वान् तथा प्रसिद्ध महात्मा सुन्दर दासजीका जन्म जयपुरके पास द्योसा नामक ग्राममें सं० १६५३ में हुआ था। ये जातिके खंडेलवाल वैश्य थे। बाल्य-कालहीमें इनका परिचय दादूदयालजीसे हो गया था और इसी कारण लगभग ६ वषकी अवस्थामें दादूदयालके शिष्य हो गये। सं० १६६० में दादूदयालकी मृत्यु होनेपर ये महात्मा नराना (दादूका मृत्यु-स्थान) हीमें रहने लगे। तदनन्तर घर आकर कुछ समयके पश्चात् जगजीवनके साथ काशी चले गये। वहांपर लगभग ३० वर्ष तक संस्कृत व्याकरण, शास्त्र, पुराणका अध्ययन किया। इसके

पश्चात् राजपूताना हीमें रहते थे। सं० १७४६ में इनकी मृत्यु सांगानेर स्थानमें हुई। यह बाल ब्रह्मचारी महात्मा थे।

चूंकि यह बड़े विद्वान् थे इस हेतु इनकी भाषा परिमार्जित और साफ-सुथरी है। फ़ारसी जाननेके कारण फ़ारसीका भी प्रयोग पाया जाता है। इनके लिखे हुए कई ग्रन्थ हैं, किन्तु उनमें 'सुन्दरविलास' अति प्रसिद्ध है। काव्यके गुणोंकी जानकारी इन्हें खूब थी। इनके साधु हृदयमें साहित्य प्रेम भी था क्योंकि ऊटपटांग पदोंके प्रति इनकी तीखी दृष्टि रहती थी। जैसा कि स्वयं कहते हैं—

बोलिए तौ तब जब बोलिबेकी बुद्धि होय,
ना तौ मुख मौन गहि चुप होय रहिए।
जोरिए तौ तब जब जोरिबेकी रीति जानै,
तुक छन्द अरथ अनूप नामें लहिए॥
गाइए तौ तब जब गाइबेको कण्ठ होय,
श्रवणके सुनत ही मनै जाय गहिए।
तुक भंग, छन्द भंग अरथ मिलै न कछु,
'सुन्दर' कहत ऐसी बानी नहिं कहिए॥

अब इनकी ज़रा वीर वाणी देखिये, कैसा, ओज है।

सुनत नगारे चोट बिगसै कमल मुख,
अधिक उछाह फूल्यो मात है न तनमें।
फेरै जब सां तब कोऊ नहिं धीर धरै,
कायर कंपायमान होत देखि मनमें॥

कूदिके पतंग जैसे परत पावक माहिं,
ऐसे टूटि परें बहु सावंतके गनमें ।
मारि घमसान करि सुन्दर जुहारे श्याम,
सोई सूर वीर रुपि रहै जाय रनमें ॥

मरते समय कहे गये दोहोंमेंसे दो दोहे नीचे उद्धृत किये जाते हैं जिससे इनके उच्चतम ज्ञानका पता चलता है।

मान लिये अन्तःकरण जे इन्द्रनके भोग।
सुन्दर न्योरा आतमा, लगो देहको रोग ॥
सुन्दर संसयको नहीं बड़ो महुच्छव एह।
आतम परमातम मिलो, रहो कि बिनसो देह।

मलूकदास

महात्मा मलूकदासका जन्म सं० १६३१ में जिला इलाहाबादके कड़ा नामक ग्राम (कस्बा) में हुआ था। जातिके खत्री थे। निर्गुण मतानुयायियोंमें इनका बड़ा उच्च स्थान है। इनके विषयमें कितनीही अद्भुत कहानियां प्रसिद्ध हैं, जैसे सोनेके तोड़ेको गंगाजीमें तैराकर प्रयागको भेजना और बादशाहके डूबते जहाजको पानीके ऊपर रखना। इनकी मृत्यु सं० १७३९ में हुई।

आपकी भाषा अन्य सन्त कवियोंकी भांति अरबी-फारसी मिश्रित खड़ी बोलीमें है। कहीं कहीं अच्छा काव्य सौन्दर्य पाया जाता है। आपने आत्म बोध, प्रेम, एवं वैराग्यपर अच्छा लिखा है। संयुक्तप्रान्तमें सर्व प्रसिद्ध इसका एक दोहा है जिसे शायद ही कोई ऐसा हो जो न जानता हो।

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गए, सबके दाता राम॥

और देखिये—

जब लगि थो अंधियार घर, मूस थके सब चोर।
जब मन्दिर दीपक जर्यो, वही चोर धन मोर॥
दया धर्म हिरदे बसै, बोलैं अमृत बैन।
तेई ऊंचे जानिए, जिनके नीचे नैन॥

अक्षर अनन्य

आपकी जन्म तिथिके विषयमें विद्वान लोग अभी तक किसी खास निर्णयपर नहीं पहुंचे हैं। किंतु इतना निश्चित रूपमें कहा जा सकता है कि ये सम्वत् १७१० में जीवित थे। आप कायस्थ कुलोद्भव थे और महाराज दतियाके यहां दीवान थे। बादको वैराग्य लेकर पन्नामें रहते थे। योग तथा वेदान्तपर कई पुस्तकें लिखी हैं। इनके विषयमें विशेष नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिये दो लाइनें उद्धृत की जाती हैं।

परलोक लोक दोउ सधै जाय।
सोइ राज जोग सिद्धान्त आय॥
निज राज जोग ज्ञानी करँत।
हठि मूढ़ धर्म साधत अनन्त॥

रैदास भक्त

ऐसा कौन ग्रामीण होगा जिसने "रैदास भगत" का नाम न सुना हो। इनका जन्म काशीमें एक चमारके घरमें हुआ था। ये कबीरदासजीके समकालीन थे। ये भी अच्छे कोटिके सन्त महात्मा थे। आजकल इनके मतानुयायी गुजरातकी ओर विशेष पाये जाते हैं। ये मीराबाईके गुरु थे। इनके विषयमें बहुत-सी चमत्कार पूर्ण कहानियाँ प्रसिद्ध हैं।

इनके फुटकर पद जनतामें प्रचलित हैं। इनकी भाषा सीधी-सादी और टीम-टामसे दूर है। कबीरकी तरह इनमें दुरूहता नहीं है। इनके भाव इतने स्पष्ट हैं कि साधारण हिन्दी जाननेवाला भी समझ सकता है। इनके शब्दोंमें स्वाभाविक सरलता, मधुरता और मृदुता है। कबीरकी तरह पांडित्य प्रदर्शित नहीं किया है। इनकी कुछ पंक्तियां नीचे दी जाती हैं—

प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी। जाकी अंग अंग बास समानी॥
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरै दिनराती॥
प्रभुजी तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहिं मिलत सोहागा॥
प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा। जैसे चितवत चन्द चकोरा॥

भगती ऐसी सुनहु रे भाई।
आइ भगति तब गई बड़ाई॥

कहा भयो नाचे अरु गाये, कहा भयो तप कीन्हे।
कहा भयो जे चरन पखारे, जो लौं तत्व न चीन्हे॥

कहा भयो जो मूँड़ मुड़ायो, कहा तीर्थ व्रत कीन्हे।
खाली दास भगत अरु सेवक, परम तत्व नहिं चीन्हे॥
हरि-सा हीरा छाँड़िकै, करै आनकी आस।
ते नर यमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास॥

उपसंहार

यहांतक हम कुछ मुख्य संत कवियोंका वर्णन कर चुके। इनके सिवा और भी कई कवि हैं किन्तु उन्हें इस छोटेसे इतिहासमें स्थान देना असंभव समझकर संक्षिप्तमें केवल खास-खास लोगोंका ही उल्लेख कर दिया है।

संक्षेपमें हम कह सकते हैं कि इन महात्माओंका एक अलग ही पंथ था। सभी लोग जाति-पांति, छूत-अछूत, ऊंच-नीचके भावोंके विरुद्ध थे। राम नामका जप सभी करते थे। किन्तु राम नामसे इनका अभिप्राय अयोध्याके राम या तुलसीके रामसे नहीं था।

ये लोग बहुधा बहुत कम पढ़े-लिखे थे। हां; हृदयकी अनुभूति इनकी निजी चीज थी। सुंदरदासको छोड़कर शायद ही कोई काव्य-कला मर्मज्ञ रहा हो। सच बात भी यही है कि ये लोग साहित्यके गुणोंसे प्रेरित होकर पद रचना नहीं करते थे

वरन् अपने सिद्धांतोंको जनताको समझानेमें सुगम और आकर्षक समझ कर काव्य-रचना करते थे ।

आजकल भी भारतके कई भागोंमें इनकी गद्दियां हैं। सबके अलग-अलग गुरु या महंत होते हैं ।

कबीरदास एक रहस्यवादी कवि हो चुके हैं। इसलिए छात्रों की सुविधाके लिए संक्षिप्तमें रहस्यवादपर प्रकाश डाला जाता है।

रहस्यवाद

आजकल हिन्दी जगत्में इस शब्दकी बड़ी धूम है। जिसे देखिये वही रहस्यवादका नाम लेकर चिल्लाता है। जहां कोई साधारण पहुंचके ऊपरकी कविता प्रकाशित हुई, दो-चार कठिन और क्लिष्ट शब्दोंका प्रयोग हुआ कि कविका नाम रहस्यवादियों-में लिखा गया। आजकल रहस्यवादियोंमेंबाबू जयशंकर 'प्रसाद' पं० सुमित्रानन्दन पंत, पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' प्रो० राम-कुमार वर्मा तथा श्रीमती महादेवी वर्माके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। लेकिन हमारी निजी धारणा है कि ये लोग रहस्यवादी कवि नहीं हैं। हां, इतना हम ज़रूर मानते हैं कि इन लोगोंकी सूझ बहुत सूक्ष्म है, दृष्टि पैनी है और हृदय विशाल है। जबतक कोई व्यक्ति अपने इस नन्हेंसे जीवनके अधिक भागमें मानव जीवनके उत्थान पतन, संसारकी गति-विधि आदिका पूरा-पूरा अनुभव नहीं कर लेता तबतक उसके लिये रहस्यवादी होना प्रायः असंभव-सा है। हम इतना जरूर कह सकते हैं कि हमारे उपर्युक्त कविगण

समय पाकर रहस्यवादी हो सकते हैं। उनके पथसे कुछ-कुछ यह पता चलता है।

"रहस्यवादके मूलमें अज्ञातशक्ति जिज्ञासा काम करती है। रहस्यवादीके निकट जगत्की सब वस्तुएं, जगत्के सारे व्यापार परमात्माके साथ अपना सम्बन्ध चरितार्थ कर रहे हैं। वह जो कुछ देखता है या सुनता है उसमें परोक्ष सत्ताका अनुभव करता है।" महात्मा कबीर जायसी और डाक्टर टैगोरमें यही रहस्य-वाद पाया जाता है।

प्रेमी-कवि (सूफ़ी)

१—सूफी एक प्रकारके फक़ीर थे। सर्व प्रथम यह एक प्रकार का 'फिरका' था ऐसा भी बहुतसे लोग कहते हैं। ये लोग सांसारिक चीजोंसे बहुत कम सम्बन्ध रखते थे। कम्बलसे शरीर ढकते थे। प्रो० रामकुमार वर्माने लिखा है कि वे सुफेद कम्बल ओढ़ते थे इसलिये सूफी कहलाते थ और दिलकी सफाई भी उनका ध्येय था, इसलिये भी सूफी कहलाते थे। किन्तु मैंने स्वयं देखा है कि सूफी कालावस्त्र पहनते हैं। इनमें 'प्रेमकी पीर' या 'इश्क हकीकी' मुख्य चीज है। इनकी रचनाओंमें ईश्वर प्रेम प्रतिपादित करना ही मुख्य है। प्रसिद्ध तत्ववेत्ता निकलसनने लिखा है कि ये लोग ऊन पहनते थे इसलिए सूफी कहलाते थे। सूफका अरबीमें अर्थ है ऊन।

२—कुछ लोग कहते हैं कि सूफी शब्द युनानी शब्द Sophos (सोफाज) से बना है। सोफ़ाजका अर्थ है ज्ञानी। बहुत अंशोंमें यह भी ठीक जंचता है। उच्चारणमें भी कितनी समानता है।

सुलेमान, कादिर और उमरखैयाम इस मतके प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं। उमरखैयामकी रूबाइयोंकी तो संसार भरमें धूम मची हुई है। सूफीमत ११ वीं शताब्दीमें उन्नतिके उच्च शिखरपर था। आजकल भी इसका रूप देखा जाता है, किन्तु अब इसकी चाल धीमी है।

सूफियोंके प्रति लोगोंमें एक भ्रम है। लोग सूफी धर्मको और वेदान्त-धर्मको एक समझते हैं, किन्तु ऐसा है नहीं। वेदांतीका कहना है "अहं ब्रह्म" किंतु सूफी अपनेको "अहं ब्रह्म" नहीं कहते। उनकी अन्तिम अवस्था केवल ईश्वर-मिलन की है "अनलहक़"। उन्हें इस बातका निश्चय नहीं कि ईश्वर और उनमें क्या संबंध है। हां, दोनोंमें समता इस बातकी है कि दोनों ईश्वरकी एकता मानते हैं।

सूफी-काव्योंमें सांसारिक प्रेम दिखाकर ईश्वर प्रेमकी ओर संकेत किया गया है। सूफी-आत्मा ईश्वर-मिलनके लिये सदा बेचैन रहती है।

इस प्रेममार्गी-धाराके बहुधा मुसलमान कवि हुए हैं। इन लोगोंने कथा-काव्य रचकर, दो सांसारिक प्राणियोंका प्रेम दिखलाकर अंतमें ईश्वरीय मिलन दिखलानेकी चेष्टा की है। सांसारिक प्रेम केवल आधारमात्र है। उसकी ध्वनि ईश्वरीय प्रेमसे है। हिन्दू जनताको आकर्षित करनेके लिये इन लोगोंने कथाके लिये हिन्दू नायक तथा नायिका और प्रचलित हिन्दी-भाषाका प्रयोग किया है।

अब कुछ मुख्य सूफी कवियोंका संक्षेपमें जानकारीके लिये वर्णन किया जाता है।

कुतबन

आप शेरशाहके पिता हुसेनशाहके दरबारमें रहते थे। इस लिये विक्रमकी १६ वीं शताब्दीके मध्यभागमें इनका वर्तमान होना कहा जा सकता है। सवत् १५५८ में आपने दोहे चौपाइयोंमें एक प्रेम-काव्य लिखा। इसका नाम "मृगावती" है। इसमें एक राजकुमार और एक राजकुमारीके प्रेमका वर्णन है। इसके द्वारा कविने प्रेम-मार्गका अच्छा निरूपण किया है।

इसकी शैली फारसीके मसनवी काव्यकी है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं। जब राजकुमार शिकारमें हाथीसे गिरकर मर गया तो उसकी दोनों स्त्रियां उससे मिलनेके लिये आनन्द-पूर्वक सती हो गईं।

रुकमिनि पुनि वैसेहि मरि गई। कुलवंती सतसों सति भई।
बाहर वह भीतर वह होई। घर बाहर को रहै न जोई।
विधि कर चरित न जानै आनू। सो सिरजा सो जाहि निआनू॥

मंझन

आपके विषयमें कुछ विशेष पता नहीं है। केवल इतना पता चलता है कि आप मलिक मुहम्मद जायसीके पूर्व हुए थे। जायसीने अपनी पुस्तकमें चार पुस्तकोंका उल्लेख किया है। एक मृगावती

और दूसरी मधुमालती। मधुमालतीकी एक खण्डित प्रति प्राप्त है। इसके रचयिता मंझनजी हैं। इस पुस्तकमें भी दो हृदयोंके सम्मिलनके आधारपर ईश्वर-मिलन प्रतिपादित है। सूफी फकीरोंके लिखनेका यही ढंग भी था।

इस पुस्तकमें कविकी उच्च कल्पना, सहृदयता तथा कोमलताका अच्छा परिचय मिलता है। प्रकृति-निरीक्षण भी अत्यन्त सुन्दरताके साथ किया गया है। प्रेम-त्याग तथा निःस्वार्थताका स्वरूप खींचा गया है। पांच चौपाइयोंके पश्चात् एक दोहेका क्रम रखा गया है।

उदाहरण—

विरह अवधि अवगाह अपारा। कोटि मांहिं एक परै त पारा॥
विरह कि जगत अविरथा जाही। विरह रूप यह सृष्टि सबाही॥
नैन विरह अञ्जन जिन सारा। विरह रूप दरपन संसारा॥
कोटि मांहि विरला जग कोई। जाहि सरीर विरह दुख होई॥

रतन कि सागर सागरहि? गज मोती गज कोइ।
चन्दन कि बन ऊपजै, विरह कि तन तन होइ?

मलिक मुहम्मद जायसी

सूफी-रचनामें सर्वप्रसिद्ध तथा मनोहारिणी पुस्तक "पद्मावत" के रचयिता मलिक मुहम्मद जायसी, जायस जिला रायबरेलीमें रहते थे। आप एक निर्धन कुलमें पैदा हुए थे। आपकी जन्म भूमिका पता ठीक नहीं है। एक स्थानपर आप कहते हैं—

जायस नगर धरम अस्थानू। तहां आय कवि कीन्ह बखानू ॥

आप एक आंखके काने थे। एक बार किसी व्यक्तिने इन्हें देखकर हंस दिया, इसपर इन्होंने कहा "मोहिका हंसेसि कि कोहरे!"

इनकी दूसरी रचना "अखरावट" है। 'अखरावट' में वर्णमालाके प्रत्येक अक्षरको लेकर उसीपर पद रचना कर किसी सिद्धान्त, नियम, आदर्शका प्रतिपादन किया गया है। पद्मावत एक प्रसिद्ध रचना है। इसमें ऐतिहासिक सत्यता भी है। चित्तौरकी रानी पद्मिनीका राजा रतनसेनसे किस प्रकार प्रेम-सम्बन्ध हुआ कविने इसीका अनूठे ढंगमें वर्णन किया है। इस कहानी द्वारा आपने प्रेमकी पराकाष्ठा दिखाई है। वेदान्त तथा सूफी मतकी सुन्दर व्यञ्जना पायी जाती है। पद्मिनीके रूपका वर्णन "नख-शिख" अपने ढंगका निराला है। यह पुस्तक भी दोहा चौपाइयोंमें है अवधी भाषाका विशेष प्रयोग है।

उदाहरण—

मैं यह अरथ पण्तिडतन बूझा। कहा कि हम कछु और न सूझा॥
चौदह भुवन जोहत उपराहीं। सो सब मानुषके घट मांही॥
तन चितौर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुधि पद्मिनि चीन्हा॥
गुरु सेवा जेहि पंथ दिखावा। बिन गुरु जगत सो निरगुन पावा
नागमती यह दुनिया धन्धा। बाचा सोई न यह चित बन्धा॥
राघव दूत सोई सतानू। माया अलाउदीं सुलतानू॥
प्रेम कथा यह भांति बिचारू। बूझि लेहु जो बूझहिं पारू॥

तुरकी अरबी हिन्दवी, भाषा जेती आहि ।
जामें मारग प्रेमका, सबै सराहै ताहि ॥

उसमान

आप गाजीपुरके निवासी थे। आपने सम्वत् १६७० में "चित्रावली" नामकी एक प्रेम-कथा लिखी। चूंकि आप मुगल बादशाह जहांगीरके शासनकालमें थे, इसलिये पैगम्बर और खलीफाकी स्तुतिके पश्चात् जहांगीरकी भी प्रशंसा की है, जैसे जायसीने शरशाह सूरीकी प्रशंसा आदिमें की है। इस पुस्तकमें पद्मावतका विशेष अनुकरण किया गया है। कथानक कल्पित है, जैसा कि कवि स्वयं कहता है:—

कथा एक मैं हिए उपाई। कहत मीठ औ सुनत सोहाई ॥

ईश्वर प्राप्तिकी साधनाकी ओर अच्छा संकेत किया गया है। इसमें पौराणिक सम्बंध भी दिखाया गया है। जायसीकी तरह सात चौपायोंके बाद एक दोहा है। 'षटऋतु' का भी अनूठा वर्णन किया गया है।

उदाहरण—

सरवर ढूंढ़ि सबै पचि रहीं। चित्रनि खोज न पावा कहीं ॥
निकसी तीर भईं बैरागी। धरे ध्यान सब बिनवै लागी ॥
गुपुत तोहि पावहिंका जानी। परगट मँह जो रहै छिपानी ॥
चतुरानन पढ़ि चारौ बेदू। रहा खोज पै पाव न भेदू ॥
हम अंधी जेहि आपु न सूझा। भेद तुम्हार कहां लौं बूझा ॥
कौन सो ठांव जहां तुम नाहीं। हम चख जोति न देखहिं काहीं ॥

पावै खोज तुम्हार सो, जेहि दिखरावहु पंथ।
कहा होइ जोगी भए, औ बहु पढ़े गरंथ।

उपसंहार

उसमानके पश्चात् सूफी कवि नहीं हुए, ऐसा न समझना चाहिये। बहुतसे छोटे-छोटे कवि हुए किंतु उनका परिचय देना आवश्यक नहीं समझा गया। उनके विषयमें पाठक अन्यत्र पढ़ सकते हैं।

यहांपर इन प्रेम-कथाओंका वर्णन नहीं दिया गया। इनके लिये पाठकोंको अन्य पुस्तकें पढ़नी चाहियें अथवा पं० रामचन्द्र-शुक्लके इतिहाससे संक्षिप्त वर्णन पढ़ लेना चाहिये।

इन सूफी कवियोंने लौकिक प्रेमको दिखाकर ईश्वरीय प्रेमकी ओर संकेत किया है। संन्यास मार्गकी कठिनाइयां,ईश्वर प्राप्तिके साधन, ईश्वर और माया आदिका वर्णन सर्वत्र देखा जाता है।

सगुण-पंथ

भक्त कवि

दो शब्द

भक्ति-कालके संत कवियों तथा सूफी कवियोंका वर्णन हो चुका। अब भक्त कवियोंका वर्णन किया जायेगा। इस स्थानपर इतना बतला देना जरूरी है कि भक्ति-कालसे लेकर आजतक हमारे हिन्दू समाजमें भगवानके दो स्वरूपोंकी पूजा, अर्चा तथा भक्ति होती रही है। पहिला रामरूप दूसरा कृष्णरूप। यहां पर प्रथम राम-भक्त कवियोंका उल्लेख किया गया है; पुनः कृष्ण-भक्त कवियोंका।

राम-भक्त कवि

गोस्वामी तुलसीदास

हिन्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तानके एकमात्र आधार महात्मा तुलसी-दासजीकी जन्मतिथि तथा जन्म भूमिके विषयमें बहुत मत मता-न्तर हैं। शिवसिंह सरोजमें गोस्वामीजीकी जन्म-तिथि सम्वत् १५८३ है। प्रसिद्ध रामायणी पं० रामगुलाम द्विवेदी इनका जन्म सम्वत् १५८९ मानते हैं। किन्तु गोस्वामीजीके शिष्य बाबा बेनी-माधव दासजीने स्वरचित "गोसाईं-चरित्र" में जन्म संवत् १५५४

माना है; और एक दूसरी पुस्तकमें भी जिसके रचयिता बाबा रघुवरदास(गोस्वामीजीके दूसरे शिष्य)हैं, लिखा है कि इनका जन्म सम्वत् १५५४ में हुआ था। इस पुस्तकका भी नाम 'गोसाईं-चरित्र' है। दूसरी पुस्तक अप्राप्य है। अस्तु, जन्म-सम्वत्का कुछ भी निश्चित रूप नहीं ठहराया जा सकता। परन्तु जन्म सम्बत् १५५४ ही ठीक जंचता है। इसके अनुसार गोस्वामीजीकी अवस्था १२६ वर्षके लगभग होती है, जो ऐसे उच्च श्रेणीके पहुंचे हुए महात्माके लिये असम्भव नहीं है। इनकी मृत्यु सम्वत् १६८० में हुई थी। इसीसे हिसाब लगाकर १२६ वर्ष माना गया है। मृत्युके विषयमें एक दोहा बहुत प्रसिद्ध है:—

सम्बत् सोलह सौ असी, असी गंगके तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तजत शरीर॥

बाबा बेनीमाधवदास इनकी मृत्युके विषयमें लिखते हैं—"श्रावण शुक्ला तीज शनि"। इनका जन्म स्थान राजापुर जिला बांदामें है, इसे बहुधा सभी वर्तमान विद्वान मानते हैं। लेखकने स्वयं राजापुरमें जाकर पूछ-ताछ की। सब लोग बतलाते हैं कि यही गोस्वामीजीकी जन्मभूमि है। उनकी कुटीके स्थानपर एक सुन्दर मन्दिर बना है जो यमुना नदीके तटपर है। उसी स्थान पर गोस्वामीजीके एक सम्बन्धी कहलानेवालेके यहां जिनका मकान मन्दिरसे मिला हुआ है, रामायणकी एक हस्तलिखित प्रति है। इस समय यह बहुत ही पुरानी होगई है। लोग इसकी पूजा करते हैं, अक्षत, फूल चढ़ाते हैं।

राजापुर ही जन्मभूमि मानकर गोस्वामीजीके जीवनका संक्षिप्त वर्णन किया जायगा।

गोस्वामीजीका जन्म सं० १५५४ में यमुना नदीके तटपर राजापुर ग्राममें हुआ था। इनके पिताका नाम आत्माराम दुबे और माताका नाम हुलसी था। रहीम कवि कहते हैं:—

'सुरतिय, नरतिय, नाग तिय, सब चाहति अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय॥'

कहते हैं कि युवावस्थामें स्वामीजी अपनी स्त्रीसे अधिक प्रेम रखते थे। एक बार इनकी इन्द्रिय-लोलुपताको देख उसने कहा—

अस्थि चर्म मय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम मंह, होति न तौ भव भीति॥

स्त्रीके इस वचनको सुनकर गोस्वामीजीको वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे घरसे चल पड़े। काशी, अयोध्या, जगन्नाथ धाम रामेश्वर, द्वारिका, बद्रीनारायण होते हुए चित्रकूटमें आकर रहने लगे। इसी स्थानपर सूरदासजीसे इनकी भेंट हुई थी। इसके पश्चात् अयोध्या आकर सम्बत् १६३१ में इन्होंने 'रामचरित-मानस' की रचना प्रारम्भ की। रामायणमें आप स्वयं लिखते हैं—

सम्वत् सोरह से एकतीसा, करौं कथा हरि पद धरि सीसा।
नवमी भौमवार मधुमासा, अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

गोस्वामीजीके बनाये हुए १२ ग्रंथ हैं, जिनके नाम निम्नलिखित हैं:—

रामचरितमानस, कवित्त रामायण, दोहावली, गातावली, रामाज्ञा, विनयपत्रिका, बरवै रामायण, रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, कृष्णगीतावली, पार्वती मंगल, जानकी मंगल ।

तुलसीदासजीकी रचना शैली, भाव गाम्भीर्य आदिके विषय में कुछ विशेष न लिखकर पाठकोंसे यही कहेंगे कि वे पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित "गोस्वामी तुलसीदासजी" को देखें। यह पुस्तक तुलसीदासपर अपने ढंगकी एक ही है । इसमें गोस्वामीजीकी जीवनीपर भी काफी प्रकाश डाला गया है ।

साधारण जानकारीके लिये कुछ मोटी बातें दी जाती हैं—

इनकी प्रतिभा, इनका अध्ययन, इनकी बुद्धिका पता हमें 'रामचरित-मानस' तथा 'विनयपत्रिका' से चलता है । 'रामचरित मानस' को एक पूर्ण ग्रन्थ कहनेमें भी अपनी अशिष्टता ही समझते हैं क्योंकि 'मानस' तो साधारण बुद्धिके परे हैं। इसमें साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक पारिवारिक, लौकिक, पारलौकिक सभी विषयोंकी जानकारीकी पराकाष्ठा है । मानस वेद, शास्त्र, पुराण सभीका निचोड़ है ।

तुलसीदासकी रचनामें हम कई तरहकी शैला पाते हैं। इनमें वीरगाथाका छप्पय छन्द, विद्यापति और सूरदासकी गीत पद्धति, कबीरकी नीति सम्बन्धी दोहा-पद्धति, जायसीके प्रबन्ध तथा गंग आदिकी सवैया और कवित्त पद्धति; काव्यकी दोहा-चौपाई पद्धति, पाते हैं ।

जगत् प्रसिद्ध इस महात्माके विषयमें विशेष लिखना सूर्यको

दीपक दिखाना है। प्रत्येक विद्यार्थीका परमधर्म और कर्त्तव्य है कि वह रामचरितमानसका अध्ययन अच्छी तरह अवश्य करे।

यहां गोस्वामीजीके छप्पय और गीतके उदाहरण दिये जाते हैं।

कतहुं विटप भूधर उपारि परसने बरक्खत।
कतहुं बाजि सो बाजि मर्दि गजराज करक्खत॥
चरन चोट चटकन चकोट अरि उरसिर बज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत॥
लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवननन्दन अटल, जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥

गीत पद्धति

जौ हौं मातु मते महं ह्वै हौं।
तौ जननी जगमें या मुखकी कहां कालिमा ध्वैहौं?
क्यों हौं आज होत सुचि सपथनि, कौन मानिहैं सांची
महिमा-मृगी कौन सुकृतिकी, खलबच-बिसिषन्ह बाँची।

गोस्वामीजीने प्रेमकी उच्चातम सीमाको दिखाया है। इसमें शृङ्गार, प्रेम तथा अन्य गुण भरे पड़े हैं। रस और अलंकारका इतना सुन्दर तथा स्वाभाविक चित्र आपको थोड़े ही से इने-गिने लोगों (सूर-मीरा) में मिलेगा। वर्णनशैली शुद्ध, सरल, सुबोध और स्पष्ट है। भाषा विशेषकर अवधी है। ब्रज-भाषापर इनका कितना अधिकार था यह 'विनय पत्रिका' तथा 'कवित्त रामायण' से स्पष्ट है।

इन महात्माकी कविताके विषयमें जितना भी लिखा जाये थोड़ा ही होगा। साहित्य-प्रेमियोंको चाहिये कि 'तुलसी-ग्रन्थावली' तृतीय भाग; तथा शुक्लजीकी 'गोस्वामी तुलसीदासजी' अवश्य देखें।

स्वामी अग्रदास

आप भक्तवर नाभादासजीके गुरु और गोस्वामी तुलसीदासजीके समकालीन थे। यद्यपि ये स्वामी वल्लभाचार्यकी शिष्य-परम्परामें थे, किन्तु इनकी प्रवृत्ति राम-भक्तिकी ओर झुकी थी और आप अन्ततक राम-भक्त ही रहे। इनकी जन्म-तिथिके विषयमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना पता अवश्य है कि आप संवत् १६३२ के लगभग वर्तमान थे। जयपुर राज्यके अन्तर्गत गलता नामक स्थानके रहनेवाले थे। इनकी बनाई हुई चार पुस्तकें प्राप्त हैं :

१—हितोपदेश उपखाणां बावनी।

२—ध्यान-मंजरी।

३—राम-ध्यान-मंजरी।

४—कुण्डलिया।

आपकी कविता श्रीनन्ददासजीकी शैली की है। ब्रज-भाषाका प्राधान्य है। उदाहरणके लिये एक पद उद्धृत किया जाता है।

कुण्डल ललित कपोल जुगल अस परम सुदेसा।
तिनको निरखि प्रकास लजत राकेस दिनेसा॥
मेचक कुटिल विसाल सरोरुह नैन सुहाए।
मुख पंकजके निकट मनो अलि-छौना छाए॥

नाभादासजी

आप स्वामी अग्रदासके शिष्य थे। आप गोस्वामीजीके समयमें वर्तमान थे। प्रसिद्ध पुस्तक 'भक्तमाल' की रचना इनके साधु-प्रेमको प्रगट करती है। इस पुस्तकका रचना काल कब है, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। केवल इतना पता चलता है कि ये सं० १६५७ में वर्तमान थे और गोस्वामीजीकी मृत्युके पीछे भी जीवित थे।

'भक्तमाल'में २०० भक्तोंका जीवन चरित्र है। इसमें ३१६ छप्पय छन्द हैं। इसे ठीक-ठीक जीवनचरित्र भी नहीं कह सकते। ये केवल प्रशंसात्मक हैं। फिर भी इससे भक्तोंके जीवनपर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। इनके विषयमें एक कथा प्रसिद्ध है कि एक बार ये गोस्वामीजीसे मिलने काशी गए। गोस्वामीजी उस समय ध्यानावस्थित थे। नाभादासजी लौटकर वृन्दावन चले आये। जब यह समाचार गोस्वामीजीको मालूम हुआ तब सीधे 'पांव पयादे' वृन्दावनको चल दिये। वहांपर नाभादासजीके यहां वैष्णवोंका भण्डारा था। कोई पात्र न पाकर एक साधुका पात्र लेकर गोस्वामीजीने उसीमें खीर मांगी और कहा 'इससे सुन्दर पात्र मेरे लिये और क्या होगा' इतनी बात सुन नाभादासजीने स्वामीजीको गद्गद् होकर गलेसे लगा लिया। 'भक्तमाल' में गोस्वामीजीके प्रति लिखा गया छप्पय यहां उद्धृत किया जाता है।

त्रेता काव्य-निबन्ध करी सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन॥

अब भक्तन सुख देन बहुरि लीला बिस्तारी ।
राम-चरन-रस मत्त रहत अहिनिसि व्रत धारी ॥
संसार अपार के पारको सुगम रूप नौका लियो ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बालमीकि तुलसी भयो॥

यह छप्पय इतना प्रसिद्ध है कि साधारण भी पढ़े लिखे लोग इसकी अन्तिम लाइन "कलि कुटिल......तुलसी भयो" को जानते हैं और प्रेम तथा श्रद्धासे गाते हैं ।

गोस्वामीजीकी कविताका प्रभाव लोगोंपर काफी पड़ चुका था इसलिये और भी बहुतसे कवि हुए किन्तु उनका वर्णन छोड़ दिया है ।क्योंकि वे कोई भक्त कवि नहीं हैं; केवल रामचन्द्र-जीके विषयमें लिखने वाले हैं ।

कृष्ण-भक्त

सूरदास

भारतवर्षके महात्माओंके जन्म, मरण तथा जन्मभूमिके विषयमें हमेशासे मतमतान्तर चला आ रहा है; क्योंकि उनकी कृतियोंसे उनका विशेष पता नहीं चलता । जो कुछ इधर-उधर मिल जाता है; उसीके आधारपर खोज की जाती है । सूरदासजीका जन्म लगभग सं० १५४० में दिल्लीके निकट सीही ग्राममें हुआ था । इनका लिखा हुआ सबसे वृहत्-ग्रन्थ 'सूरसागर' है । इसके पश्चात् इन्होंने 'सूरसारावली' की रचना की । 'सूरसारावली' के समय इनकी अवस्था ६७ वर्षकी थी । जैसा कि वे स्वयं कहते हैं —

गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठि बरस प्रवीन ।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन ॥

इनका तीसरा ग्रन्थ 'साहित्य लहरी' है । इसमें लिखा है:—

मुनि पुनि रसनके रस लेख ।
दसन गौरी नन्दको लिखि सुबल संबत पेख ॥

मुनि=७, रस न=रसहीन अर्थात् ० शून्य, रस=६, दशन गौरीनन्द=१, ।

कुल मिलाकर १६०७ होता है । साहित्य लहरी भी सूरसागरके दृष्टकूट पदोंका संग्रह है । इसलिये 'सूर-सारावली' की तरह 'साहित्य-लहरी' भी 'सूरसागर'के बाद लिखी गई । यदि हम दोनोंका रचनाकाल एक ही माने तो कह सकते हैं कि सं० १६०७ में सूरदासजी ६७ वर्षके थे । इस तरह जन्मकाल अनुमानसे सम्बत् १५४० में होता है । मरणकाल १६२० कहा जाता है । 'चौरासी वैष्णवोंकी वार्ता, तथा 'भक्तमाल'में लिखा है कि ये ब्राह्मण थे । कुछ लोग इन्हें चन्दबरदाईका वंशज बतलाते हैं ।

कुछ लोग सूरदासको "जन्महिते हौं नैन विहीना" के आधार पर जन्मका अन्धा बतलाते हैं, किन्तु जन्मके अन्धे थे या बादमें अन्धे हुए इसपर मतभेद है । इनके अन्धे होनेके विषयमें एक कथा प्रसिद्ध है ।

सूरदासजी एक युवतीपर मुग्ध हो गये थे । एक दिन युवतीने कहा-'महाराज क्या आज्ञा है ।' इसपर इन्हें बड़ा दुःख तथा साथ ही

वैराग्य उत्पन्न हुआ और अपनी दोनों आंखें सुईसे फोड़ दीं भक्तमालमें लिखा है कि ये जन्मके अन्धे थे।

इनको प्रसिद्धि कितनी है, इसपर तीन चुने हुए पद नीचे दिए जाते हैं—

सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केसव दास।
अबके कवि खद्योत सम, जंह तंह करैं प्रकास॥
जो कछु रहा सो अन्धरा कहिगा कठवहु कहेसि अनूठी।
बचाखुचा सो जोलहा कहिगा, और कहै सो जूठी॥
किधौं सूरको सर लग्यो, किधौं सूरको पीर।
किधौं सूरको पद लग्यो, वेध्यो सकल सरीर॥

इन पंक्तियोंसे ही ज्ञात हो जाता है कि सूरदासजी कितने प्रसिद्ध हैं।

हिन्दी-साहित्यमें महात्मा तुलसीदासके पश्चात् सूरदासजी का ही स्थान है। यहां इनकी कुछ मुख्य विशेषताओंका वर्णन किया जाता है। वात्सल्य और श्रृंगाररसका जो अनूठा वर्णन इन्होंने किया है वह सम्भवतः जगत्-साहित्यमें अद्वितीय है। बाल्यकालके उत्तम वर्णनका एक उदाहरण देखिये—

१—सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरन चलत, रेनु-तन मंडित, मुंह दधि लेप किये॥
२—सिखवत चलन जसोदा मैया।
अरबराय कर पानि गहावति, डगमगाय धरै पैया॥

शृंगाररसमें भी इन्हें 'कमाल' हासिल है। देखिये कैसा सजीव चित्रण है—

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ो।
एक धार दोहनि पहुंचावत, एक धार जहं प्यारी ठाढ़ी॥

वियोग शृंगारका वर्णन देखिये—

१—एहि बेरियां बनते चलि आवते।
दूरहि ते वह बेनु अधर धरि बारंबार बजावते।

२—मधुबन! तुम कस रहत हरे?
विरह वियोग श्यामसुन्दरके ठाढ़े क्यों न जरे?

सूरदासजी निर्गुण ब्रह्मके ध्यानकी अपेक्षा सगुणोपासनाको कितना ऊंचा महत्त्व देते हैं, यह उनके "भ्रमरगीतसार" से मालूम होता है। इसके पद कितने मर्मस्पर्शी हैं, यह पढ़नेसे ही मालूम होता है।

१—निर्गुण कौन देसको बासा?
मधुकर हंसि समुझाय, सौंह दै बूझति सांच न हांसी॥

२—सुनिहैं कथा कौन निर्गुनकी, रचि पचि बात बनावत।
सगुन-सुमेरु प्रगट देखियत, तुम तृनकी ओट दुरावत॥

आपकी गणना अष्टछापके कवियोंमें है। आपने जिस एकही शैलीका प्रयोग आदिसे अन्ततक किया है, वह है गीत-पद्धति। आपकी रचनामें काव्योचित सभी गुण पायेजाते हैं। आपकी कविता में रस, भाव विचार, भाषा, अलंकार, ध्वनि, व्यञ्जना. उक्ति वैचित्र्य सभी गुण पाये जाते हैं। संयोग-वियोग शृंगार, तथा बाल-लीलाके

चित्रण करनेमें आप सर्वश्रेष्ठ हैं। इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि इनका शृङ्गार गोस्वामीजीके शृङ्गारकी तरह पवित्र और शान्त नहीं है। इनकी कविताके विषयमें यह दोहा प्रसिद्ध है:—

उत्तम पद कवि गंगके, कविताको बलवीर।
केशव अर्थ गंभीरको, सूर तीन गुन धीर॥

नन्ददास

आप सूरदासजीके समकालीन थे। इनकी जीवनीके विषयमें विशेष जानकारी नहीं है। इनका कविता-काल संवत् १६२५ के लगभग माना जाता है। स्वामी बिट्ठलनाथके पुत्र गोकुलनाथने "२५२ बैष्णवोंकी वार्ता" नामक पुस्तकमें लिखा है कि ये गोस्वामी तुलसीदासजीके भाई थे। बाबा वेणीमाधव दास रचित 'गोसाईं-चरित' के अनुसार आप तुलसीदासजीके गुरुभाई थे।

इनके विषयमें भी एक कहावत प्रसिद्ध है कि ये सिन्धुदेशमें एक खत्री महिलापर आसक्त हुए और उसके वृन्दावन आनेपर स्वयं भी वहां चले आये। यहां स्वामी बिट्ठलनाथसे भेंट हो गई और आप उनके भक्त हो गये।

अष्टछापके कवियोंमें इनका द्वितीय स्थान है, अर्थात् सूरदासके बाद इन्हींका नाम गिना जा सकता है। इनके प्रति एक कहावत प्रसिद्ध है "और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया" आपकी सर्वप्रसिद्ध रचना "रास पञ्चाध्यायी" और "भ्रमरगीत" हैं। भाषा मधुर, सरल तथा अनुप्रासयुक्त है। आपने लगभग १४

ग्रंथ रचे। आपकी इच्छा थी कि रामायणकी तरह एक बृहद् "कृष्णकाव्य" लिखें किन्तु इच्छा पूरी न हो सकी। इनकी कविताके नमूने नीचे दिये जाते हैं।

रासपंचाध्यायीसे

ताही छिन उडुराज उदित रस-रास-सहायक।
कुंकुम मंडित बदन प्रिया जनु नागरि नायक॥
कोमल किरन अरुन मानो बन व्यापि रही त्यों।
मनसिज खेल्यो फागु घुमड़ि घुरि रह्यो गुलाल ज्यों॥

भ्रमर गीतसे

जौ उनके गुन नाहिं और गुन भए कहां ते?
बीज बिना तरु जमै मोहिं तुम कहौ कहां ते?
वा गुनकी परछांह री, माया दरपन बीच।
गुनते गुन न्यारे भए, अमल बारि जल-कीच॥
सखा सुनु स्यामके।

कृष्णदास

आप जातिके शूद्र थे, किन्तु अपने प्रेम तथा भक्तिके कारण स्वामी बल्लभाचार्यके प्रधान शिष्य हो गये। आपकी भी गिनती 'अष्टछाप' के कवियोंमें है। आपकी कविता सूर तथा नन्दके ढंग-की नहीं है। आपकी भाषा शुद्ध तथा ललित है। "जुगलमान-चरित्र" नामका एक छोटा ग्रंथ आपका रचा हुआ प्राप्त है। "भ्रमरगीत" और "प्रेमतत्त्व-निरूपण" नामके दो ग्रंथ आपके

बनाये हुए कहे जाते हैं। आपकी रचना ब्रज-भक्तोंकी भांति शृङ्गारिक है—

मो मन गिरधर छबि पै अटक्यो।

ललित त्रिभंग चाल पै चलिके, चिबुक चारु गड़ि ठटक्यो।
सजल स्याम-घन-बरन नील है, फिर चित अनत न भटक्यो।
कृष्णदास किये प्रान निछावर, यह तन जग सिर पटक्यो॥

कहा जाता है कि इसी पदको गाकर आपने शरीर छोड़ा था। आपका कविता-काल सम्वत १६०० के लगभग है।

परमानन्द दास

आप बल्लभाचार्यके शिष्य थे। आपकी गणना "अष्ट-छाप" में है। आपका निवास स्थान सम्भवतः कन्नौजमें था। इसीसे आप कन्नौजिया (कान्यकुब्ज) ब्राह्मण कहे जाते हैं। इनके पदोंका संग्रह 'ध्रुव चरित्र' तथा 'दानलीला'में मिलता है। आपकी कवितामें तन्मयता खूब दीख पड़ती है। कहते हैं कि एक बार इनकी कविता सुनकर आचार्य्यजी कई दिनों तक बेसुध रहे।

देखिये यह पद कितना मनमोहक है—

कहा करौं वैकुण्ठहिं जाय ?
जहं नहिं नन्द जहां न जसोदा, नहि जहं गोपी ग्वाल न गाय॥
जहं नहिं जल जमुनाको निर्मल और नहीं कदमनको छाय।
परमानन्द प्रभु चतुर ग्वालिनी, ब्रजरज तजि मेरीजाय बलाय॥

कुंभनदास

आप भी अष्टछापके कवियोंमें हैं। आपका कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। फुटकर पद मिलते हैं। आप बड़े विरक्त महात्मा थे। एक बार अकबर बादशाहने इन्हें फतहपुरसीकरीमें बुलाकर बड़ा आदर सम्मान किया, जिसका इन्हें जीवन भर खेद रहा। इसीपर इन्होंने यह पद रचा—

सन्तन कहा सीकरी सो काम ?
आवत जात पनहियां टूटी बिसरि गयो हरिनाम ॥
जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनकौ करिबे परी सलाम ।
'कुंभनदास 'लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम ॥

चतुर्भुजदास

आप महात्मा कुंभनदासके पुत्र और गोसाईं बिट्ठलनाथके शिष्य थे। आपकी भी गणना 'अष्टछाप'के कवियोंमें है। आपके बनाये हुए तीन ग्रन्थ प्राप्त हैं; द्वादशयश, भक्ति प्रताप, हितजूको मंगल। इनकी फुटकर रचनाएं भी मिलती हैं।

इस पदको देखिये—

जसौदा ! कहा कहौं हौं बात ?
तुम्हरे सुतके करतब मों पै, कहत कहे नहिं जात।
भाजन फोरि, ढारि सब गोरस, लै माखन दधि खात ॥
जौ बरजौं तौ आंखि दिखावे, रंचहुं नाहिं सँकात।
और अटपटी कहं लौं बरनौ छुवत पानि सों गात ॥
दास चतुर्भुज गिरिधर गुन हौं कहति कहति सकुचात ॥

छीतस्वामी

आप मथुराके एक धनी पण्डा थे । जीवनकी पहली सीढ़ीमें आपका चरित्र अच्छा नहीं था। गोसाईं बिट्ठलनाथसे साथ होनेके कुछ दिन बाद आप उनके शिष्य हो गये और आपकी गणना 'अष्टछाप' में हो गई। आप कृष्ण-भक्त तो थे ही साथ ही साथ ब्रजभूमिके 'आशिक' थे। आप कहते हैं :—

हे विधिना तो सौं अंचरा पसारि मांगौं,
जनम जनम दीजो याहि ब्रज बसिबो।

आपका रचना काल सं० १६१२ के लगभग है। इनका एक और भी पद देखिये।

भोर भए नवकुंज सदन तें आवत लाल गोवर्धन धारी।
लटपर पाग मरगजी माला सिथिल अंग डगमग गति न्यारी॥
बिनु गुन भाल विराजति उरपर नख छत द्वैज चन्द अनुहारी।
छितस्वामी जब चितए मो तन, तब हौं निरखि गई बलिहारी॥

गोविन्द स्वामी

आप अन्तरीके रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। आप घर छोड़कर ब्रजमें गोसाईं बिट्ठलनाथके शिष्य हो गए।'अष्टछाप' में आपकी भी गणना है। आपका कविता-काल सं० १६०० और १६१५ के भीतर कहा जाता है।

एक पद देखिये—

प्रात समय उठि जसुमति जननी गिरधर सुतको उबटि न्हवावति।
करि सिंगार बसन भूषन सजि फूलन रचि रचि पाग बनावति॥

छुटे बन्द बागे अतिसोभित, बिच बिच चोब अरगजा लावति।
सूवनलाल फूंदना सोभित, आजुकी छबि कछु कहति न आवति॥
विविध कुसुमकी माला उरधरि श्रीकर मुरली बेंत गहावति।
लै दरपन देखे श्रीमुखकी, गोविन्द प्रभु चरनन सिर नावति॥

हितहरिवंश

आप "राधाबल्लभ" सम्प्रदायके प्रवर्तक हैं। आपकी जन्म-भूमि मथुराके पास एक ग्राममें थी। आपका जन्म संवत् १५५९ माना जाता है। कहा जाता है कि आपको रात्रिमें राधाजी स्वप्न में दीख पड़ीं जिससे आपने राधाजीकी भक्ति ग्रहण की और उन्हींके नामपर अलग सम्प्रदाय चलाया। आपका रचना-काल १६०० के लगभग है। यद्यपि आपके व्यक्तिगत कार्योंसे साहित्यकी अधिक सेवा नहीं हुई किन्तु आपके शिष्योंने साहित्यमें बड़ा काम किया। आप संस्कृतके पूर्ण ज्ञाता थे। आपकी हिन्दी-रचना बड़ी मधुर तथा सरस है। आपके ८४ पदोंका संग्रह "हितचौरासी" के नामसे प्रसिद्ध है।

कुछ पंक्तियां नीचे दी जाती हैं :—

१—रहौ कोउ काहू मनहिं दिए।
मेरे प्राननाथ श्री स्यामा सपथ करौं तिन छिए॥
जो अवतार कदम्ब भजत हैं धरि दृढ़व्रत जु हिए।
तेऊ उमगि तजत मर्यादा बन बिहार रस पिए॥
खोए रतन फिरत जे घरपर, कौन काज इमि जिए?
हित हरिवंश अनत सचु नाहीं बिनपर रसहिं पिए॥

२—चलहि किनि मानिनि कुञ्ज कुटीर।

... ...

गद गद सुर विरहाकुल पुलकित श्रवत विलोचन नीर॥
कासि क्वासि बृषभान नन्दिनी विलपत विपिन अधीर।
बंसी विसिख व्याल मालावलि पंचानन पिक कीर॥
मलयज गरल हुतासन मारुत साखामृग रिपु चीर।
'हितहरिवंश' परम कोमल चित सपदि चली पियतीर॥

... ...

मीराबाई

मीराबाईके विषयमें ठीक-ठीक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इस समयके विद्वानोंने पुरानी खोजोंको असत्य ठहराया है, किन्तु जब तक कुछ ठीक निश्चय नहीं हो जाता, तबतक जानकारीके लिये पुरानी बातें दी जाती हैं—

आप मेड़ताके राठौर रत्नसिंहकी पुत्री थीं। आपका जन्म-काल सं० १५७३ माना जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि इनके जन्मकालके सम्बन्धमें ऐतिहासिकोंमें मतभेद है। इनका विवाह उदयपुरके महाराणाकुमार भोजराजके साथ हुआ था। विवाहके लगभग १० वर्ष बाद पतिदेवका स्वर्गवास हो गया। इसपर आप अनन्य भावसे अपने इष्टदेव और प्रीतम भगवान कृष्णके चरणोंकी सेवा करने लगीं। कहा जाता है कि इनकी इस अटूट भक्तिको देखकर घरवाले तरह तरहके दुःख देने लगे।

अन्तमें दुःखी होकर आपने गोस्वामीजीको पद्यमें निम्नलिखित मर्मभेदी पत्र लिखा:—

स्वस्ति श्रीतुलसी कुल भूषण दूषण हरण गोसाईं ।
बारहिं बार प्रनाम करहुं अब हरहु सोक समुदाई ॥
घरके स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई ।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई ॥
मेरे मातु पिताके सम हौ हरि भक्तन्ह सुखदाई ।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखिये समझाई ॥

इसपर गोस्वामीजीने विनय-पत्रिकाका यह अति प्रसिद्ध पद लिखकर भेज दिया । इस पत्रमें भी लोगोंको सन्देह है ।

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
सो नर तजिय कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषण बन्धु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितनि, भए सब मङ्गलकारी ॥
नातो नेह राम सो मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं ।
अञ्जन काह आंख जासों फूटे बहुतक कहौं कहां लौं ॥
'तुलसी' सो सब भांति परमहित पूज्य प्रानते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम पद एतो मतो हमारो ॥

इस पत्र व्यवहारकी सत्यतामें विद्वानोंमें बहुत मतभेद हैं। कुछ लोग इसे कपोल-कल्पित मानते हैं। उनका कहना है कि मीरा १६०३ में मर चुकी थीं और गोसाईंजी १५८९ में पैदा हुए थे। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि पन्द्रह वर्षकी

अवस्थाके लगभगवाले (या इससे भी कम) गोस्वामीजीके पास एक अवस्थामें बड़ी महिला (इनका जन्म १५७३) इस प्रकार पत्र लिखेगी। कुछ विद्वान कहते हैं कि जब स्वयं मीराका जन्म तथा मरण दिवस अभी ठीक-ठीक निश्चित नहीं हुआ है तब तक किसीको कुछ राय या सम्मति न देनी चाहिये।

आपके गुरु रैदास थे इसे ये स्वयं लिखती हैं :—

१—रैदास सन्त मिले मोहिं सतगुरु दीन्हासुरत सहदानी।

२—गुरु मिलिया रैदासजी, दीन्हों ज्ञानकी गुटकी।

आपके पदोंमें प्रेमरस तो कूट-कूटकर भरा है। हृदय तथा मस्तिष्ककी तल्लीनताकी पराकाष्ठा है। आपके पदोंमें भक्तोंके लिये एक अनोखा स्वाद है। पढ़ते जाइये, प्रेममें आंसू बहाते जाइये, फिर भी हृदय यही चाहेगा कि एक पद और—

आपके रचित चार ग्रन्थ प्राप्त हैं :—

(१) नरसीजीका मायरा, (२) गीतगोविन्दकी टीका, (३) राग-गोविन्द, (४) राग सोरठके पद। आपकी भाषा राजस्थानी मिश्रित हिन्दी है। कहीं-कहीं शुद्ध ब्रजभाषा भी है।

उदाहरणके लिये आपके दो-एक पद उद्धृत किये जाते हैं।

१—बसो मेरे नैननमें नन्दलाल।

मोहनी मूरति सांवरी सूरति नैना बने बिसाल॥
अधर सुधा-रस मुरली राजित उर बैजन्ती माल।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल॥
'मीरा' प्रभु संतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल।

२—मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई॥
भाई छोड़ा बंध छोड़्या, छोड़्या संग सोई।
साधुन संग बैठि बैठि लोक लाज खोई॥

*　　*　　*　　*

अब तो बात फैल पड़ी जाणे सब कोई।
'मीरा' राम लगण लागी होणी होय सो होई॥

रसखान

आप दिल्लीके एक पठान सरदार थे। आपका जन्म-संवत् १६४० और मरण १६८५ कहा जाता है। कहा जाता है कि आप बादशाही खानदानके थे। जैसा कि इस दोहेसे प्रतीत होता है—

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा वंसकी, ठसक छांड़ि रसखान॥

इनके कृष्ण-भक्त होनेकी एक कथा प्रसिद्ध है। कहते हैं, आप एक स्त्रीपर मोहित थे। वह बहुधा मान किया करती थी और इनका अनादर करती थी। एक दिन आप श्रीमद्‌भागवतका उल्था फारसीमें पढ़ रहे थे। बस, इन्हें कृष्ण-भक्तिका स्वाद मिल गया और धीरे-धीरे गोपियोंके प्रेमने इन्हें इतना मस्त बना दिया कि आप ब्रज जाकर गोसाईं विट्ठलनाथके शिष्य हो गये। प्रेम वाटिकाका इसी विषयपर एक दोहा देखिये—

तोरि मानिनी तें हियो, फेरि मोहिनी मान ।
प्रेमदेवकी छबिहिं लखि, भये मियां रसखान ॥

आपका वर्णन, '२५२ वैष्णवोंकी वार्ता' में भी मिलता है। आपकी दो पुस्तकें अबतक प्रकाशित हुई हैं। (१) प्रेमबाटिका (२) सुजानरसखान। अन्य कृष्ण-भक्तोंकी तरह आपने गीत-पद्धतिमें कुछ नहीं लिखा।

आपकी भाषा साधारण ब्रज है, किन्तु साफ, सुथरी, और मधुर है। इनकी पदावलीमें प्रसाद और माधुर्य तो भरा पड़ा है।

प्रेमबाटिकामें ५२ दोहे हैं और "सुजान रसखान" में १२६ छन्द हैं ।

(प्रेमबाटिका से)

सम्पति सुख अरु विषय रस, पूजा निष्ठा ध्यान ।
इनते परे बखानिए, शुद्ध प्रेम रसखान ॥
अति सूछम कोमल अतिहिं, अति पतरो अति दूर ।
प्रेम कठिन सबतें सदा, नित एक रस भरपूर ॥

अब आपके ब्रज प्रेमको देखिये—

मानुष हों तो वही रसखान बसौं संग गोकुल गांवके ग्वारन ।
जो पसु हों तो कहा बसु मेरो चरौं नित नन्दकी धेनु मझारन ॥
पाहन हों तो वही गिरिको जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जौ खग हों तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदम्बकी डारन॥

एक और पद देखिये—

आयो हुतो नियरेरसखानि कहा कहं तू न गई वहि ठैया ।

या ब्रजमें सिगरी बनिता सब वारति प्रानन लेत बलैया ॥
कोऊ न काहूकी कानि करै कछु चेटक सो जु करयो जदुरैया।
गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया ॥

भक्तोंमें रसखानके प्रेमसे भरे हुए पद अति प्रसिद्ध हैं। देहातोंमें भी इनके पदोंका काफी प्रचार है। आप मीरा और सूरकी तरह कृष्ण-भक्तिमें पागल थे इसीलिये आपके पदोंमें एक छिपी शक्ति है जो हृदयको खींचती है।

ध्रुवदास

आपके विषयमें कुछ विशेष पता नहीं है। आप स्वप्नमें हित-हरिवंशके शिष्य हुए थे। विशेषकर वृन्दावन हीमें रहते थे। आपके लिखे हुए ४० ग्रन्थ हैं— जिनमें कुछके नाम ये हैं—

वृन्दावनसत, सिंगारसत, नेहमंजरी, सुखमंजरी, रतिमंजरी, वनविहार, रंगविहार, प्रेमलता, भक्त-नामावली आदि। इनकी कई पुस्तकोंमें संवत् दिया हुआ है जिससे इनका रचना-काल १६६० और १७०० के बीचमें होता है।

(सिंगार सतसे)

रूप जल उठत तरंग हैं कटाछनके,
अङ्ग अङ्ग भौरनकी अति गहराई है।
नैननको प्रतिबिम्ब परयो है कपोलनमें,
तेई भए मीन तहां ऐसी उर आई है ॥
असन कमल मुसुकात मानो फबि रही,
थिरकत बेसरिके मोतीकी सुहाई है।

भयो है मुदित सखी लालकी मराल मन;

जीवन जुगल ध्रुव एक ठांव पाई है॥

(नेह मंजरीसे)

प्रेम बात कछु कही न जाई। उलटी चाल तहां सब भाई।
प्रेम बात सुनि बौरो होई। तहां सयान रहै नहिं कोई॥
तन मन प्रान तिहीं छिन हारै। भली बुरो कछुवै न विचारै।
ऐसो प्रेम उपजिहै जबहीं। हित ध्रुव बात बनैगी तबहीं॥

भक्तिकालके अन्य कवि

भक्तोंकी मधुर और रसीली वाणी जब ब्रजमें गूंज रही थी, उसी कालमें सम्राट अकबरके प्रोत्साहनसे उसके दरबारमें भी साहित्यसेवी अपनी मधुर वाणी सुनाया करते थे।

१—रहीम खानखाना

आप अकबरके फूफा बैरमखांके पुत्र थे। आपका जन्म सं० १६१० में हुआ था। आप अरबी फारसीके विद्वान तो थे ही साथ ही साथ हिन्दी और संस्कृतके भी अच्छे ज्ञाता थे। आप बड़े दानी थे। कवियोंका खूब आदर करते थे। गोस्वामी-जीसे आपका विशेष स्नेह था।

कहा जाता है कि एक गरीब ब्राह्मणको पुत्रीकी शादीके लिये कुछ रुपयोंकी आवश्यकता पड़ी। वह गोस्वामीजीके पास गया। गोस्वामीजीने एक पत्रमें दोहेका एक पद लिखकर रहीमके पास भेज दिया। रहीमने उसे बहुत-सा रुपया दिया और दोहेकी पूर्ति भी कर दी। दोहा इस प्रकार है—

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, यह चाहत सब कोय।
गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सों सुत होय॥

रहीमकी कृतियोंसे संसारका अच्छा अनुभव प्रगट होता है। इनके दोहे नीति विषयक हैं, जो बहुधा लोगोंकी ज़बानपर रहते हैं। इनकी भाषा सरल और सुव्यवस्थित है। उसमें माधुर्य है प्रसाद गुण तो लबालब भरा है। आपकी भाषामें ब्रज और अवधी दोनोंका सम्मिश्रण है। बरवा लिखनेमें आपने अवधीका प्रयोग किया है। अन्य रचनायें ब्रज भाषामें हैं। आपकी कुछ रचनाओंका नाम दियाजाताहै— रहीम सतसई, बरवै नायिका भेद, शृङ्गार सोरठ, मदनाष्टक, नगर शोभा। इनके कुछ स्फुट कवित्तसवया भी प्राप्त हैं। आपकी मृत्यु सं० १६८२ में हुई थी।

आपके कुछ रोचक पद नीचे दिये जाते हैं—

प्रेम प्रीति कौ बिरवै, चल्यो लगाय।
सींचनकी सुधि लीजो, मुरझि न जाय॥

वास्तवमें यह बरवै रहीमका नहीं है किन्तु इनके नामके साथ साथ अति प्रसिद्ध है। यह इनके नौकरकी स्त्री द्वारा लिखा गया था जिसके द्वारा प्रोत्साहित होकर आपने भी बरवै लिखा।

चित्रकूटमें रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जापर विपदा पड़त है, सो आवत यदि देस॥
रहिमन कोऊ का करे, ज्वारा चोर लबार।
जो पति राखनहार है, माखन चाखनहार॥
रहिमन बिपदाहूं भली, जो थोरे दिन होय।

हित अनहित या जगतमें, जानि परत सब कोय ॥

सोरठा

रहिमन हमें न सोहाय, अमी पियावत मान बिन।
जो बिष देय बुलाय, प्रेम सहित मरिबो भलो ॥

एक बरवा देखिये—

टूटि खाट, घर टपकत, टटिऔ टूटि।
पिय कै बांह सिहँनवां सुख कै लूटि ॥

गंग कवि

आप अकबरके दरबारी कवि थे। शायद आप जातिके भाट थे। इनके पदोंमें भाटपनकी बू आती है। रहीम खान-खानासे आपकी बड़ी मित्रता थी। कहा जाता है कि एक नवाब-ने इन्हें हाथीसे मरवा डाला था। इनके जन्म-मरणके विषयमें और कुछ नहीं पता चलता। हाथीके द्वारा मरण होनेके बारेमें कई पद प्रसिद्ध हैं—

गंग ऐसे गुनीको गयंद सो चिराइए।

कहा जाता है कि मृत्युके पूर्व आपने यह दोहा पढ़ा था—

कबहुं न भड़ुवा रन चढ़े, कबहुं न बाजी बम्ब।
सकल सभाहि प्रणाम करि, बिदा होत कवि गंग ॥

अपने समयके आप बड़े प्रसिद्ध कवि थे, जैसा कि इस दोहेसे पता चलता है।

तुलसी गंग दूवौ भये, सुकविनके सरदार।
जिनकी कवितामें मिली, भाषा विविध प्रकार ॥

आपकी रचना सरस है। वाग्वैचित्र्यके साथ साथ वीर और श्रृंगार रस भी पाया जाता है। एक पद देखिये—

झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान,
एकन तें एक मनो सुखमा जरदकी।
कहै कवि 'गंग' तेरे बलकी बयारि लागें
फूटी गज घटा घन घटा ज्यों सरदकी॥
एते मान सोनितकी नदियां उमड़ि चलीं
रही न निसानी कहूं महिमें गरदकी।
गौरी गह्यो गिरिपति गनपति गह्यो गौरी,
गौरीपति गह्यो पूंछ लपकि बरदकी॥

नरोत्तमदास

आप सीतापुर जिलेमें कस्बा बाड़ीके रहनेवाले थे। इनके विषयमें और कुछ पता नहीं चलता। आपका रचित ग्रन्थ 'सुदामा-चरित्र' बहुत प्रसिद्ध है। 'ध्रुवचरित्र' भी इन्होंने लिखा था, किन्तु उसका अभी तक कहीं पता नहीं चला। इनकी भाषा बहुत ही परिमार्जित और सुव्यवस्थित है। अन्य कवियोंकी तरह 'फालतू' शब्द नहीं रखे गये हैं। सुदामा की दीनताका कितना सजीव वर्णन किया है—

सीस पगा न झगा तन पै, प्रभु! जानेको आहि, बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी सी, लटी दुपटी अरु पायं उपानहुको नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक, रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीन दयालको धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा॥

भगवान सुदामासे रोते हुए पूछते हैं—

कैसे बेहाल बिवाइन सों भए कंटक-जाल गड़े पग जोए।
हाय महा दुख पाये सखा ! तुम आये इतै न, कितै दिन खोए ?
देखि सुदामाकी दीन-दसा करुना करिकै करुनानिधि रोए।
पानी परातको हाथ छुयो नहिं, नैननके जल सों पग धोए॥

आचार्य केशवदास

आप सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम काशीनाथ था। आप ओड़छा नरेश महाराज रामसिंहके भाई इन्द्रजीत सिंहके मित्र थे और उन्हींकी सभामें रहते थे। आपका जन्म सं० १६१२ और मृत्यु सं० १६७४ में हुई।

केशवदासका 'हिन्दी नवरत्नों'में एक विशेष स्थान है। आप लक्षण कालके आचार्य माने जाते हैं। आप संस्कृतके पंडित थे, इसलिये आपने संस्कृत-साहित्यकी अमरनिधिको भाषामें प्रगट करनेकी भरसक कोशिश की। लक्षणपर आपने दो ग्रन्थ लिखे हैं; रसिकप्रिया सं० १६४८ में; कविप्रिया सं० १६५८ में; जो अलंकार और रस विषयक है। इसके सिवा आपका प्रबन्ध काव्य 'रामचन्द्रिका' बहुत प्रसिद्ध है। यह सं० १६५८ में लिखा गया था। आपमें चाहे सूर तुलसीकी सरलता और तन्मयता न हो, किन्तु रस अलंकार आदिका विस्तृत विवेचन करनेके कारण आप साहित्यके प्रधान अंग समझे जाते हैं।

आप बड़े रसिक जीव थे। जीवनमें सदा हरा-भरा रंग

और अठखेलियां पसन्द करते थे। एक बार वृद्धावस्थामें इन्हें कूंएपर बैठा देखकर एक तरुणी बालाने 'बाबा' कहकर सम्बोधित किया। इसपर इन्होंने यह प्रसिद्ध दोहा कहा—

केसव केसनि अस करी, बैरिहुं जस न कराहिं।
चन्द्रबदनि मृगलोचनी, 'बाबा' कहि कहि जाहिं॥

इनकी रची हुई चार अन्य पुस्तकें प्राप्त हैं। उनके नाम ये हैं—विज्ञान गीता, वीर सिंहदेव चरित, रतन बावनी और जहांगीर रस चन्द्रिका।

आचार्य केशवके पूर्व किसी भी अन्य कवि या महाकविने विविध छन्दात्मक शैलीका इतना विद्वत्तापूर्ण प्रकाश नहीं कर पाया। यद्यपि इनकी पदावलोकी भाषामें संस्कृत और बुन्देलखण्डी पाई जाती है, फिर भी आपकी गणना ब्रजभाषाके ही महा कवियोंमें है। आपकी भाषा साहित्यिक है। रसिक होनेके कारण आपकी भाषा भी रसदार है। आपकी कल्पना-शक्तिमें अच्छी उड़ान है।

यद्यपि आचार्य हमारे साहित्य निर्माणके खास कारीगरोंमें हैं; फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इनमें तुलसी, सूर सी बातें न थीं—

साहित्यमें समालोचना एक मुख्य अंग है, और आचार्य केशव समालोचना क्षेत्रके एक कुशल किसान हैं। हिन्दी साहित्य आपकी अपूर्व सेवाओंके लिये सदा कृतज्ञ रहेगा। आपकी कुछ पंक्तियां यहां दी जाती हैं—

किधौं मुखकमल ये कमलाकी ज्योति होति,
किधौं चारु मुख चन्द्र-चन्द्रिका चुराई है।
किधौं मृगलोचनि मरीचिका मरीचि किधौं,
रूपकी रुचिर रुचि सुचि सो दुराई है॥
सौरभकी सोभाकी सदन घनदामिनीकी,
केसव चतुर चित हीकी चतुराई है।
ऐसी गोरी भोरी तेरी थोरी-थोरी हांसी मेरी,
मोहनकी मोहनी कि गिराको गोराई है॥
(रामचन्द्रिकासे)

अरुणगात अति प्रात पद्मिनी प्राननाथ भय।
मानहुं केसवदास कोकनद कोक प्रेम मय॥
परि पूरन सिन्दूर पर कैधों मंगल घट।
किधौं शक्रको छत्र मढ्यो मानिक मयूख पट॥
कै सोनित-कलित कपाल यह किल कापालिक कालको।
यह ललित लाल कैधों लसत दिग-भामिनिके भाल को॥

सेनापति

आप अनूप शहर (जिला बुलन्द शहर) के रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम पं० गंगाधर था। इनका जन्म-काल सं० १६४६ के लगभग माना जाता है। कहा जाता है कि ढलती अवस्थामें ये संन्यास लेकर वृन्दावनमें रहने लगे थे। इनके रचे हुए दो ग्रन्थ हैं—(१) काव्यकल्पद्रुम, (२) कवित्तरत्नाकर। ऋतुवर्णन आपका अनूठा है। आपकी

रचना में अनुप्रास और यमकका अच्छा योग पाया जाता है। मुसलमानी दरबारमें भी इनका अच्छा सम्मान था। इनकी भाषा प्रौढ़ और मर्मस्पर्शिनी है। भाषा तथा अलंकार आदिपर आपका पूरा अधिकार था। आपकी गणना कुछ इने-गिने कवियोंमें है।

पावस ऋतुका वर्णन देखिये—

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखौ,
आई ऋतु पावस न पाई प्रेम पतियाँ।
धीर जलधरकी सुनत धुनि धरकी औ,
दरकी सुहागिनकी छोह भरी छतियां॥
आई सुधि बरकी, हिएमें आनि खरकी.
सुमिरि प्रानप्यारी वह प्रीतमकी बतियां।
बीती औधि आवनकी लाल मन भावनकी,
डग भई बावनकी सावनकी रतियां॥
रावनको बीर, सेनापति, रघुबीर जू की,
आयो है सरन छांड़ि ताहि मद अन्धको।
मिलत ही ताको राम कोप कै करी है ओप,
नाम जोय दुर्जनदलन दीनबन्धुको॥
देखौ दान बीरता-निदान एक दान ही में,
दीन्हें दोऊ दान, को बखानै सत्यसंधको।
लंका दसकंधरकी दीनी है बिभीषणको,
संका बिभीषणकी सो दीन्ही दसकंधको॥

उपसंहार

पहिले लिखा जा चुका है कि भक्तिकालमें तीन प्रकारके मार्ग निकले। पर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि भक्तिके सिवा और कुछ था ही नहीं। अब भक्ति-काव्य तथा इसके आन्दोलन पर एक दृष्टि डाली जायगी।

भगवान बुद्ध तथा महाबीरके आदर्श धर्मका जब ह्रास होने लगा तब सं० ८०० के लगभग केरल प्रान्त (धुरदक्षिण) में भगवान शंकरका आलोक बढ़ा। उन्होंने अपनी कुशाग्रबुद्धि तथा अलौकिक प्रतिभासे बौद्धधर्मको नष्ट कर दिया, और हिन्दुओंके सामने वेदान्त धर्मका प्रचार किया। उनका कहना था कि संसार माया है। 'अहं ब्रह्म' 'तत्वमसि' का ही प्रचार उनका मूल मंत्र था। किन्तु इस अहंवाद तथा मायावादसे साधारण जनताको शान्ति कहां ? १० वीं ११ वीं शताब्दीके आसपास दक्षिण प्रान्तमें ही चार महात्मा हुए। इन लोगोंने तरह-तरहके पन्थका निर्माण किया। किन्तु सबमें भक्ति ही प्रधान रही। स्वामी रामानुज वा माधवाचर्य निम्बार्क और विष्णुस्वामीका नाम धार्मिक साहित्यमें विशेष है। स्वामी रामानुजके द्वारा स्थापित, 'विशिष्ठाद्वैत' में भगवान या ब्रह्म साकार भी हो सकता है। बस इसी आधारपर उनकी शिष्यपरम्परामें स्वामी रामानन्दने दाशरथि रामको भगवानका अवतार मानकर सुख और शांतिका उपाय ढूंढ़ा। आपका समय १५ वीं शताब्दी था (जन्म सं० १४५६)। इनके शिष्य कबीरने भक्तिको

प्रधान स्थान अवश्य दिया किन्तु इनका मार्ग स्वामी रामानन्दसे अलग था। इन्होंने रामको साकार न मानकर निगुर्णधाराका प्रचार किया। रामानन्दकी शिष्य-परम्परामें हमारे प्रातःस्मरणीय महात्मा तुलसी दासजी हुए जिन्होंने रामको केवल साकार हो मानकर प्रचार नहीं किया, वरन दाशरथि रामको इस प्रकार प्रेमके धागेमें बांधा कि राम आज सदा हमारे साथ रहते हैं। उनके बिना हिन्दू अपनेको हिन्दु नहीं कह सकते। उनका नाममात्र भव-सागरसे पार कर देता है। माधवाचार्य तथा निम्बार्क स्वामी द्वारा प्रचारित भक्ति मार्गमें कृष्णप्रेम मुख्य रहा। इन लोगोंने बिहारसे ही धर्म प्रचार आरम्भ किया। यह कृष्ण-भक्ति बंगालमें चैतन्य महाप्रभुके द्वारा उमड़ पड़ी और 'मैथिल-कोकिल' विद्यापति द्वारा बिहार गूंज उठा। इसमें सन्देह नहीं कि ११ वीं १२ वीं शताब्दीमें लिखे गये 'गोतगोविन्द' ने (जयदेवजीका काव्य) विद्यापति पर काफी प्रभाव डाला, किन्तु कृष्ण-भक्तिकी अविरल धारा जो आजतक बहती चली आ रही है वह ब्रजसे ही पैदा हुई। श्रीवल्लभाचार्यजी माधवाचार्यकी शिष्य-परम्परामें थे। कृष्ण भगवानका बाल रूप ही इनको इष्ट था। इनके चार शिष्य थे तथा इनके पुत्र गोसाईं बिट्ठलनाथके भी चार ही शिष्य थे। ये ही आठों शिष्य "अष्टछाप" के कवि कहलाते हैं। "अष्टछाप" बिट्ठलनाथ द्वारा लिखा गया था। इसमें आठ भक्त शिष्योंका—जो कवि भी थे—जीवनचरित्र है। इन आठोंके नाम हैं—

(१)सूरदास, (२) कुम्भनदा स,(३) परमानन्ददास, (४) कृष्णदास, (५) छीतस्वामी, (६) गोविन्दस्वामी, (७) चतुर्भुजदास और (८) नन्ददास ।इनमें सूरदास ही सर्वश्रेष्ठ हुए हैं। इन्हीं लोगोंके द्वारा कृष्णकाव्यका प्रादुर्भाव हुआ। यही राम-काव्य तथा कृष्ण-काव्यका छोटासा इतिहास है।

लक्षण-काल

[संवत् १७००—१९००]

संक्षिप्त परिचय

हम देख चुके हैं कि यवन-साम्राज्यसे पीड़ित प्रजाने भक्तिका सहारा लेकर कल्याण तथा शान्तिका मार्ग निकाला और उसके मुख्य प्रतिनिधि तुलसी और सूर हुए, किन्तु अब समयने पलटा खाया और राम-भक्ति-काव्य तथा कृष्ण-भक्ति-काव्यका ह्रास होने लगा। यवनोंका वह आतंक और प्रभुत्व भी जाता रहा। बस इस निर्भयताने देशकी अवस्था ही बदल दी। विदेशी (यूरोपीय) लोगोंका पदार्पण हो चुका था। वे लोग बहुधा पूर्व और दक्षिण हीमें रहे। अशान्ति जो कुछ थी वह पूर्व और दक्षिण ही में। उत्तरी और पच्छिमी भाग शान्त था। राजा लोग एक बार (ब्रिटेनके रिस्टोरेशनकी तरह) फिर आमोद प्रमोदमें लग गये। कवि लोग अपनी जीविकाके लिये राज-दरबारोंमें जा जाकर उन राजाओंके विचारानुकूल पद्य सुनाने लगे। राजाओंने भी उनको आश्रय दिया और वे लोग शृंगार-रस की कवितायें सुनाने लगे। इतना ही नहीं, किन्तु उन राजाओंके लिये शृंगार-रसके अवलम्बन नायिकाओंका वर्णन भी जोरोंसे चल

पड़ा। उद्दीपन रूपमें षट्ऋतु वर्णन भी होने लगा और इसमें इन लोगोंने कमाल हासिल किया।

इस नायिकाभेद-प्रभेदके साथ-साथ छन्द शास्त्रपर भी प्रकाश डाला गया और लक्षण ग्रन्थ भी बनने लगे। जिससे लक्षण और रीति ग्रन्थोंकी भरमार हो गई। इन लोगोंने अपने इस कार्यके लिये सकल-विद्या-निधि संस्कृत-ग्रन्थोंको ही आधार बनाया और प्रचलित फारसीकी "अय्याशी" के फन्देमें न पड़े। इनमें कुछ लोग तो इतने बढ़े कि आचार्यत्वके पदपर पहुंच गये।

महाकवि केशव आचार्य कहलाने लगे। परन्तु उन्हें भक्ति-कालके अन्दर ही रखा गया है। क्योंकि इनका जीवन भक्ति-कालके अन्दर ही है (सं० १६१२ – १६७४)। इसमें सन्देह नहीं कि केशव दासकी रीति ग्रन्थकी रचनाने साहित्यकी एक कमी पूरी की। इतना लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि केशवके पूर्व भी कृपाराम (सं० १५६८ में) और गोप कवि (१६१५ में) रस और अलंकारपर ग्रंथ लिख चुके थे। केशवदासके ५० वर्ष बादसे तो इन रीति तथा लक्षण ग्रंथोंकी अविरल धारा बह चली। इसका प्रारम्भ चिन्तामणि त्रिपाठीसे होता है।

इन रीति-कालके कवियोंका उद्देश्य विशेष कर रीति तथा लक्षण ग्रंथ ही लिखना था। उसकी सहायताके लिये इन्हें पद्य रचना करनी पड़ी। यही कारण है कि कुछ खास कवियोंको छोड़कर (जैसे केशव, विहारी) अन्य लोगोंमें व्याकरण सम्बन्धी दोष पाया जाता है। भाषा इनकी व्रज है किन्तु उसमें खास

ब्रज-भाषा नहीं मिलती जो सूरदास आदिकी कविताओंमें है, वरन् कविपरम्पराकी आडम्बर और कोमल कान्त पदावली ही पाई जाती है। भाषाकी शुद्धता, परिमार्जितता और गम्भीरतापर इन लोगोंका बहुत कम ध्यान रहा।

इन कवियोंने विशेष कर मुक्तक छन्द ही ग्रहण किया और इसकी पराकाष्ठा कविवर बिहारीके दोहोंमें हुई। एक छोटे-से दोहेमें ऊँचा और बारीक विचार लानेमें आप सिद्धहस्त थे।

पहले कहा जा चुका है कि इन लोगोंकी कविताओंमें शब्दाडम्बर विशेष हैं। उनके ग्रंथोंमें न समाजका सुन्दर चित्रण मिलता है और न कवियोंके व्यक्तित्वका ही। अतः निःसंकोच भावसे कहा जा सकता हैं कि साहित्यका एक बड़ा अंश पूरा करते हुए भी इन लोगोंने जन-साधारण तक न तो पहुंचनेकी कोशिश की और न किसी तरहका उनसे संबंध ही रखा। विलासिता ही इनकी कृतियोंकी जननी थी जो राजदरबारमें ही रहती थी। इन्होंने साहित्यका एक अंग (बड़ा तूल, पवारा बढ़ाकर) पूरा किया, किन्तु तुलसी-सूरकी भांति हिन्दू और हिन्दुत्वकी रक्षा कुछ भी न की।

त्रिपाठी-बन्धु

चिन्तामणि मतिराम तथा भूषण*

चिन्तामणि

आप जिला कानपुर, ग्राम तिकवांपुरके रहनेवाले कान्य-कुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम पं० रत्नाकर त्रिपाठी था। मतिराम, भूषण और जटाशंकर इनके भाई थे। इनका जन्मकाल अनुमानसे संवत् १६६६ के लगभग माना जाता है। इन्होंने काव्य शास्त्रका अच्छा अध्ययन किया था। इनका छन्द-शास्त्रका ग्रन्थ अपने विषयका सर्वाङ्ग पूर्ण, सुव्यवस्थित और शास्त्रीय पद्धतिसे लिखा गया शायद सर्व प्रथम ग्रंथ है। इनके लिखे हुए ग्रन्थ जो अधिक प्रसिद्ध हैं उनके नाम ये हैं:—(१) 'कवि कुल-कल्पतरु' २) 'काव्य विवेक' (३)'काव्य प्रकाश'(४) 'रामा-यण, और (५) 'छन्द विचार' ।

रामायणमें इन्होंने केशवकी विविध छन्दात्मक शैलीका अनुकरण किया है। इनकी भाषा ललित और सानुप्रास होती

---

*पुरानी धारणा थी कि आप सब सहोदर भाई थे किन्तु आजकल लोग इसकी सत्यतामें सन्देह करते हैं। हिन्दी जगतमें इस मतभेदकी काफी चर्चा है।

मतिरामकी लिखावटसे पता चलता है कि वे विश्वनाथके पुत्र थे और वत्सगोत्री ब्राह्मण थे किन्तु 'वृत्ति और कौमुदी' और 'शिवराज भूषण' के देखनेसे ऐसा पता चलता है, कि भूषण रत्नाकर त्रिपाठीके पुत्र थे और "कश्यपी कुल" में पैदा हुए थे।

थी। वर्णन शैली उत्कृष्ट और मनोरंजक है। शायद इनके इन्हीं गुणोंका प्रभाव महाकवि भूषणपर पड़ा हो। कुछ दिनोंतक ये सूर्यवंशी भोंसला मकरन्द शाहके यहां रहे। इनके दो पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

कोटि बिलास कटाक्ष कलोल बढ़ावै हुलास न प्रीतम हीतर।
यों मनि थामें अनूपम रूप जो मैनका मैन बधू कहि ईतर॥
सुन्दरि सारी सफेद ये सोहत यों छवि ऊंचे उरोजनकी तर॥
जोबन मत्त गयन्दके कुम्भ लसै जनु गंग तरंगनि भीतर॥
ये,ई उधारत हैं तिन्हैं जे परे मोह महोदधिके जल फेरे।
जे इनको पल ध्यान धरैं, मनते न परैं कबहुं जम घेरे॥
राजै रमा रमनी उपधान अभै बरदान रहे जन नेरे॥
है बल भार उदंड भरे हरिके भुजदंड सहायक मेरे।

मतिराम

आप चिन्तामणिके छोटे भाई थे। इनका जन्म संवत् १६७४ के लगभग माना जाता है। बून्दी नरेश महाराव भावसिंहके यहां आपका अच्छा आदर था। इनके रचित ग्रन्थ ये हैं (१) ललित ललाम, (२) साहित्य-सार (३) लक्षण श्रृङ्गार (४) मतिराम सतसई और (५) रस राज। 'रस राज' सबसे अधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है। आपकी गणना महाकवियोंमें है।

इनकी रचनाशैली कवित्त-सवैयात्मक थी। सतसई दोहात्मक है, किन्तु विहारीके कोटिकी नहीं है। इनकी भाषा शब्दा-

डम्बरसे मुक्त है। भावोंकी कृत्रिमता तो छूतक नहीं गई। अनुप्रासका चमत्कार आकर्षक है। आपमें प्रौढ़ता, संयम और परिपक्वता है। उदाहरणके लिये कुछ पद नीचे दिये जाते हैं :—

जगत विदित बूंदी नगर, सुख सम्पतिको धाम।
कलियुगहूमें सत्ययुग, तहां करत विश्राम॥
नदजल बरसत भूमिके, जलधर सम मातंग।
बिना परनिके खग जहां, सुन्दर तरल तुरंग॥

क्यों इन आँखिन सो निहसंक ह्वै मोहनको तन पानिय पीजै?
नेकु निहारे कलंक लगै यहि गांव बसे कहु कैसे कै जोजै?
होत रहै मन यों मतिराम कहूं बन जाय बड़ो तप कोजै।
ह्वै बनमाल हिए लगिए अरु ह्वै मुरली अधरा रस पीजै॥

कुन्दनको रंग फीको लगै, झलकै अति अंगन चारु गोराई।
आँखिनमें अलसानि, चितौनिमें मंजु विलासनिकी सरसाई॥
को बिन मोल बिकात नहीं, मतिराम लहै मुसकान मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरैसी निकाई॥

मो मन तम तोमहि हरौ, राधाको मुख-चन्द।
बढ़ै जाहि लखि सिन्धु लौं, नंद नन्दन आनन्द॥
नागरि-नैन-कमान सर, करत न ऐसी पीर।
जैसे करति गंवारिके, दृग धनुहीके तीर॥

भूषण

आपका जन्म संवत् १६७० में हुआ था। इनके असली नामका पता नहीं चलता। इनको चित्रकूटके सोलंकी राजा रुद्र-

नाथके यहांसे 'भूषण' की उपाधि मिली और तभीसे इसी नामसे प्रसिद्ध हो गये। आप बहुतसे राजा महाराजाओंके दरबारमें गये किन्तु अन्तमें छत्रपति महाराज शिवाजीके यहां स्थायी रूपसे रहने लगे। आपने शिवाजीकी प्रशंसामें अलंकार ग्रन्थ 'शिवराज भूषण' तथा, 'शिवा बावनी' लिखा। कहा जाता है कि आप पन्ना नरेश छत्रसालके यहां भी आदर तथा सम्मान पाते थे और उनका प्रशंसामें 'छत्रशाल दशक' नामका ग्रन्थ लिखा। आपकी मृत्यु १७७२ में हुई।

आपकी रचना साहित्यिक महत्त्वके साथ साथ ऐतिहासिक महत्त्व भी रखती है। वीर-गाथा-कालके पीछे हमें वीर भूषण ही दिखाई पड़ते हैं, जिन्होंने अपनी रचनासे आश्रयदाताको दूना बल प्रदान किया। आपको यदि 'वीर रस' का जन्मदाता कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। आपने कुछ पद शृङ्गार रसमें भी लिखे किन्तु वह नहींके बराबर ही हैं। शायद आपका जन्म, दुःखी भारतको जगानेके लिये ही हुआ था। आपकी भाषा सजीव, प्रबल और प्रौढ़ है।ओजसे पूर्ण है। उसमें शिथिलताका नामतक नहीं है। आपकी भाषा बुन्देलखण्डी और अवधी प्रभासित ब्रज है। अलंकारोंकी अधिकतासे अर्थ कहीं-कहीं अस्पष्ट हैं। व्याकरणके नियमोंका भी कहीं-कहीं उल्लंघन किया गया है। उदाहरणार्थ दो पद नीचे दिये जाते हैं :—

डाढ़ोके रखैयनकी डाढ़ी-सी रहति छाती,
बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिन्दुवानेकी।

काढ़ि गई रैयतके मनकी कसक सब,
मिटि गई ठसक तमाम तुरकानेकी ॥
भूषन भनत दिल्लीपति दिल धक-धक
सुनि सुनि धाक सिवराज मरदानेकी।
मोटी भई चण्डी बिन चोटीके चबाय सीस,
खोटी भई सम्पति चकत्ताके घरानेकी ॥

ऊंचे घोर मन्दिरके अन्दर रहनवारी,
ऊंचे घोर मन्दरके अन्दर रहाती हैं।
कन्दमूल भोग करें कन्दमूल भोग करें,
तीनबेर खाती सो तो तीन बेर खाती हैं ॥
भूषण सिथिल अंग भूखन शिथिल अंग,
बिजन डुलाती ते वै बिजन डुलाती हैं।
भूषन भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं ॥

महाकवि बिहारीलाल

हिन्दी-प्रेमी ऐसा कौन व्यक्ति होगा जिसने कविवर बिहारीलालका नाम न सुना हो। आपका जन्म ग्वालियरके निकट बसुआ गोविन्दपुरमें सं० १६६० के लगभग हुआ था। ये माथुर चौबे कहे जाते हैं। एक दोहेसे पता चलता है कि आपका बाल्य-काल बुन्देलखण्डमें और तरुणावस्था मथुरामें बीती, जहां इनकी ससुराल थी। आप जयपुरके महाराज जयसिंहके यहां रहते थे।

ऐसा प्रसिद्ध है कि जब पहले-पहल ये जयपुर गये तब राजा साहब अपनी छोटी रानीके प्रेममें इतने लीन थे कि राज-काजके लिये भी बाहर नहीं निकलते थे। इसपर विहारीजीने यह दोहा लिखकर भेज दिया—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास यहि काल।
अली कली ही सो बन्ध्यो, आगे कौन हवाल॥

इसपर राजा साहब बाहर निकले और विहारीजीका आदर बढ़ने लगा। महाराजने इसी प्रकारके और दोहे बनानेके लिये इन्हें आदेश दिया और एक दोहेके लिये एक अशर्फी इनाम रखा, इस प्रकार ७१९ दोहे बने और विहारी-सतसईके नामसे प्रसिद्ध हुए। कुछ लोग ७०० दोहे का होना ही ठीक बतलाते हैं। आपकी मृत्यु सं० १७२० के आसपास हुई।

'सतसई' कैसा ग्रन्थ है, इसका आदर कैसा है, यह सब बातें इसीसे मालूम हो सकती हैं कि इसकी कमसे कम ३५ टीकाएं हुई हैं। पं० पद्मसिंह शर्म्माको इसकी टीकापर १२००) रु० का मंगला प्रसाद पारितोषिक मिल चुका है।

इन दोहोंमें कविने वह भाव रख दिया है जो विरले ही कवि सवैया या कवित्तमें रख सकते हैं। मुक्तक छन्दकी महत्ताकी पराकाष्ठा इन दोहोंमें है। कल्पनाकी उड़ान और नाजुक ख्याली जिस मात्रामें इन दोहोंमें पाई जाती है वह शायद ही अन्यत्र कहीं दीख पड़े। कविने "गागरमें सागर" रख दिया है। शृंगाररसका यह अद्वितीय ग्रंथ है। केवल एक ही ग्रन्थ लिखकर भी कविवर

विहारी महाकवि माने जाते हैं। 'सतसई'का प्रत्येक दोहा अमूल्य है। इसके विषयमें जो कुछ लिखा जाय थोड़ा है। किसीने इसकी प्रशंसामें ठीक ही कहा है—

सतसैयाके दोहरे, ज्यों नावकके तीर।
देखतमें छोटे लग, बेधें सकल सरीर॥

इनकी भाषा शुद्ध, साहित्यिक ब्रज है। अन्य कवियोंकी तरह इन्होंने शब्दोंको तोड़ा मरोड़ा नहीं है। इनमें गढ़न्त शब्द भी नहीं पाये जाते। रस व्यंजना तथा भाव व्यञ्जना अति उत्तम ढङ्गसे दिखाई गई है। इनमें सजीवता तथा स्वाभाविकताका मूर्तिमान रूप पाया जाता है। कलाके विचारसे या रीतिके विचारसे यद्यपि विहारीलालने रचना नहीं की, किन्तु इतना मानना पड़ेगा कि आपने नायक, नायिका, रस आदिका पूरा ध्यान रखकर तब रचना की थी। इसे रीति उदाहरण ग्रन्थ कह सकते हैं। उदाहरणके लिये कुछ दोहे उद्धृत किये जाते हैं।

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तनुकी झाँई परे, स्याम हरित द्युति होय॥
अधर धरत हरिके परत, ओठ दीठ पट जोति।
हरित बांसकी बांसुरी, इन्द्रधनुष रंग होति॥
अपने अँगके जानिके, यौवन नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नयन, नितम्बको, बड़ो इजाफा कीन॥
कंज नयनि मंजन किये, बैठे ब्योरति बार।

कच अङ्कुरिन बिच दीठि दै, चितवति नन्दकुमार।
इन दुखिया अँखियानको, सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बने न देखते, बिन देखे अकुलाहिं॥
सोहत ओढ़े पीतपट, स्याम सलोने गात।
मनो नीलमनि सैलपर, आतप पर्‌यो प्रभात॥
औंधाई सीसी सुलखि, विरह विरति बिललात।
बीचहिं सूखि गुलाब गो, छींटौ छुयो न गात॥

महाकवि देव

आप इटावाके रहनेवाले थे। कुछ लोग इनको सनाढ्य ब्राह्मण कहते हैं, और कुछ लोग कान्यकुब्ज। अब भी देहातमें इनके वंशज पाये जाते हैं। इनका जन्म संवत् १७३० और मरण काल सं० १८०२ माना जाता है। आपने १६ वर्षकी अवस्थामें प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भावविलास' लिखा। कुछ लोग इन्हें ७२ ग्रन्थोंके और कुछ लोग ५२ ग्रन्थोंके रचयिता कहते हैं। किन्तु इनके २६ ग्रन्थोंका पता है। जिनमें कुछके नाम ये हैं--भावविलास, अष्टयाम, भवानीविलास, सुजान विनोद, प्रेम-तरंग, रागरत्नाकर, देव चरित्र, जातिविलास, रसविलास, नख-शिख, प्रेमदर्शन आदि। रीतिकालमें सबसे अधिक रचना आप ही की है।

इनके अधिक ग्रन्थ लिखनेका एक यह भी कारण है कि आप कवित्त और सवैयोंमें कुछ उलट फेर करके उसे नया रूप दे देते थे। आपके सभी छन्दोंमें अधिक समानता है।

कहा जाता है कि इनकी प्रतिभा और कवि-हृदयकी परख करनेवाला कोई नहीं मिला। इसलिये इन्हें तमाम देशमें घूमना पड़ा और इस अनुभवका यह फल हुआ कि आपने 'जातिविलास, की रचना की जिसमें भारतके प्रत्येक प्रांतकी स्त्रियोंका अनूठा तथा सच्चा चित्रण है। आप जिस दरबारमें जाते थे, उसके नाम पर एक ग्रंथ लिख देते थे। शायद इन्हें राजाभोगीलाल अच्छे आश्रयदाता मिले थे, जिनपर आपने "रसविलास" ग्रंथ लिखा। उनकी प्रशंसामें आप कहते हैं—"भोगीलाल भूप लाख पाखर लेवैया जिन्ह, लाखन खरचि रचि आखर खरीदे हैं।"

देवजी आचार्य और कवि दोनों रूपोंमें हमें मिलते हैं। काव्यशास्त्रकी आपने 'काव्यरसायन" या "शब्दरसायन" में मार्मिक विवेचना की है। छन्दशास्त्रकी रचनामें आपने संस्कृत शैलीका अनुकरण किया है, अर्थात् उदाहरण और लक्षण साथ हैं और उदाहरण उसी छन्दमें हैं जिसका लक्षण दिया गया है। आपने नीति काव्य भी लिखा है।

आपकी भाषा परिपक्व, प्रौढ़ और सुव्यवस्थित व्रज है। इनके शब्दोंमें कोमलता और सरलता भरी है। अलङ्कार यद्यपि खूब पाया जाता है किन्तु उनमें शब्दाडम्बर नहीं हैं। भाषा भावगम्य और मुहावरेदार है। उपमाएं मौलिक हैं। कहीं-कहीं शब्द तोड़े मरोड़े गये हैं। उदाहरणके लिये दो छन्द उद्धृत किये जाते हैं—

कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोई कहौ रंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं।
कैसे यह लोक नर लोक वर लोकनि मैं,
लीन्हीं मैं अलोक लोक लोकनि ते न्यारी हौं॥
तन जाउ मन जाउ, देव गुरुजन जाउ,
जीव किन जाउ टेक टरति न टारी हौं।
वृन्दावनवारी बनवारीकी मुकुटवारी,
पीत पटवारी वाहि मूरति पै वारी हौं॥

सुनिके धुनि चातक भौंरनकी चहुं ओरिन कोकिल कूकनिसों।
अनुराग भरे हरि बागनमें सखि रागत राग अचूकनिसों॥
कवि देवछटा उनई जु नई बन भूमि भई दल दूकनिसों।
रंगराती हरी हहराती लता झुकि जाति समीरके झोंकनिसों॥

भिखारीदास

आप प्रतापगढ़ (अवध के पास ट्योंगा ग्रामके निवासी थे। जातिके कायस्थ थे। इन्होंने अपना पूरा परिचय दिया है। आप काव्य शास्त्रके प्रत्येक भागसे पूर्ण परिचित थे। आपको कुछ लोग आचार्य्य मानते हैं। इनके रचित ग्रंथ ये हैं—

(१) रस सारांश (२) काव्य निर्णय (३) शृंगार निर्णय (४) नाम प्रकाश (५) विष्णुपुराण (६ छन्द प्रकाश (७) शतरंज शक्तिका और (८) अमर प्रकाश। इनका कविता काल सं० १७८५ से सम्वत् १८०७ तक माना जाता है।

काव्याङ्गोंके निरूपणमें दासजीका बहुत बड़ा स्थान है। छन्द, रस, अलंकार, रीति गुण, दोषादिपर आपने काफी विवेचना की है। श्रृंगाररस ही आप ज्यादा पसन्द करते थे। इनमें देवकी अपेक्षा अधिक रस विवेक था।

इनकी भाषा शुद्ध परिमार्जित और प्रौढ़ है। आपने सानुप्रासिक भाषाका अधिक प्रयोग नहीं किया है। शब्दाडम्बरकी अपेक्षा भावोंके प्रकाशनका इन्हें अधिक ख्याल था। व्याकरणकी भूलें भी आपमें बहुत थोड़ी हैं। उदाहरणमें दो पद दिये जाते हैं—

नैननको तरसैए कहां लौं, कहां लौ हियो बिरहागिमें तैए ?
एक घरी न कहूं कलपैए, कहां लगि आननको कलपैए ?
आवै यही अब जीमें विचार सखी चलि सौतिहुंके घर जैए ?
मान घटे ते कहा घटिहै जुपै आन पियारेको देखन पैए॥

कंज सकोच गड़े रहे कीचमें मीनन बोरि दियो दह नीरन।
दास कहै मृगहूको उदास कै बास दियो है अरन्य गम्भीरन॥
आपुसमें उपमा उपमेयह्वै नैन ये निन्दित हैं कवि धीरन।
खंजनहूको उड़ाय दियो हलुके करि डारे अनङ्गके तीरन॥

बेनी कवि (बंदीजन)

बेनी कवि बैंतीं जिला रायबरेलीके रहनेवाले बन्दीजन थे। आप नवाब अवधके वज़ीर श्रीटिकैतरायके सम्मानित पात्रोंमें

थे। उनके नामपर इन्होंने 'टिकैतराय प्रकाश' नामका एक ग्रन्थ सं० १८४६ में बनाया। दूसरा ग्रन्थ है रस-विलास, इसमें रसों-का निरूपण किया गया है, किन्तु ये ज्यादा प्रसिद्ध हैं अपने भंड़ौवोंके लिये। इनके भंड़ौवोंका संग्रह 'भंडौवा संग्रह' के नाम से प्रकाशित हुआ है। यह हास्यरसका ग्रंथ हैं। अभी तक साहित्यमें हास्यरसकी कमी थी, जो बेतरह खटकती थी। श्रृङ्गार, वीर, करुण, शान्त आदिपर काफी लिखा जा चुका था किन्तु हास्यरसपर कवियोंने कलम नहीं उठाई थी। यह कमी इन्हींके द्वारा पूरी हुई। इसमें किसीकी उपहास पूर्ण निन्दा रहती है। इस तरहकी रचना सभी देशके सभी साहित्योंमें पाई जाती है।

इनकी भाषा बोलचालकी साधारण भाषा है। ब्रजभाषाके सांचेमें ढली हुई इनकी पद-रचना मुहावरेदार है।

उदाहरण देखिये—

घर घर घाट घाट बार बार ठाट ठटे,
बेला औ कुबेला फिरैं चेला लिये आस पास।
कविनसों बाद कर, भेद बिन नाद करैं,
महा उनमाद करैं धरम करम करैं नास॥
बेनीकवि कहैं बिभिचारिनको बादसाह,
अतन प्रकासत न सतन सरम तास।
ललना ललक, नैन मैनकी झलक,
हंसि हेरत अलक रद खलक ललकदास॥

पद्माकर भट्ट

सुप्रसिद्ध 'गंगा-लहरी' के रचयिता पद्माकरजीका नाम कौन ऐसा है, जिसने न सुना हो। आपका जन्म सं० १८१० में जिला बांदा में हुआ था और मृत्यु कानपुरमें गंगाजीके तटपर सं० १८९० में हुई। इनके पिता मोहनलालजी भट्ट प्रसिद्ध कवि थे। ये तैलंग ब्राह्मण थे। रीतिकालके कवियोंमें आपका स्थान अत्यन्त ऊंचा है। विहारीको छोड़कर कवि समाजमें कोई भी इनकी तुलनाका रसिक कवि नहीं हुआ। ये ब्रजभाषाके अन्तिम सहृदय कवि थे। इनके पश्चात् ब्रज कविताका उन्नत-भाल झुकने लगा।

इन्होंने कई राज-दरबारोंमें अपनी विलक्षण प्रतिभाके कारण प्रतिष्ठा प्राप्त की। आप कुछ दिन बांदाके नवाब हिम्मत बहादुर सिंह (जिन्होंने बादमें अवध सेनामें श्रेष्ठ पद पाया,) के यहां रहे और उन्हींके नामपर "हिम्मत बहादुर विरदावली" लिखी। सितारा नरेश रघुनाथराव या राघोबाके यहांसे इन्हें एक हाथी, एक लाख रुपया और १० ग्राम मिले। इसके बाद ये जयपुर महाराजके यहां गये। वहांपर महाराज प्रतापसिंहके पुत्र महाराज जगत-सिंहके साथ बहुत दिन रहे। उनके नामपर "जगद्विनोद" नामक प्रसिद्ध ग्रंथ बनाया। सम्भवतः "पद्माभरण" नामका अलंकार ग्रंथ भी वहींपर रचा गया था। इसके पश्चात् उदयपुर गये और वहांसे ग्वालियरके महाराज दौलतराव सिंधियाके यहां गये। यहां उनका बड़ा आदर हुआ और वहां 'हितोपदेश' का हिन्दीमें

उन्होंने भावानुवाद किया। फिर बूंदी होते हुए बांदा चले आये। अन्तिम अवस्थामें आप रोग ग्रसित रहते थे। मरनेके समय कानपुरमें गंगाजीके तटपर रहने लगे।

इनकी भाषा सरस, साफ-सुथरी तथा सुव्यवस्थित है। वाक्य-विन्यास व्याकरण संयत है। रचना-शैली अनूठी और आकर्षक है। कवित्त-लेखनकलामें तो आप आदर्श हैं। आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी। ये केवल शृंगाररस हीके पण्डित नहीं थे वरन् वीर और शान्तरसमें भी अनूठे ढंगसे लिखते थे।

मधुर और सुन्दर ब्रजभाषापर आपका पूर्ण अधिकार था। अलंकारोंका प्रयोग स्वाभाविक तथा चमत्कारपूर्ण है। उसमें किसी प्रकारका बनावटपन नहीं है।

उदाहरणके लिये कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं—

एहो नंदलाल! ऐसी व्याकुल परी है बाल,
हाल ही चलौ ता चलौ, जोरे जुटि जायगी।
कहैं पदमाकर नहीं तौ ये झकोरे लगे,
ओरे लौं अचाका बिनु घोरे घुरि जायगी॥
सीरे उपचारन घनेरे घनसारन सों,
देखत ही देखौ दामिनी तौं दुरि जायगी।
तौही लगि चैन जौ लौं चेतिहैं न चंदमुखी,
चेतैगी कहूं तौ चांदनीमें चुरि जायगी॥

ए ब्रज चन्द चलो किन वा ब्रज लूक बसंतकी ऊकनि लागी।
त्यों पद्माकर पेखो पलासन पावक-सी मनो फूंकन लागी॥
वै ब्रजनारी विचारी बधूबन बावरी लौं हिए हूकन लागी।
कारी कुरूप कसाइन पै सु कुहू कुहू क्वैलिया कूकन लागी॥

सम्पत्ति सुमेरकी कुबेरकी जो पावै ताहि,
तुरत लुटावत विलंब उर धारै ना।
कहैं पद्माकर सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारनके वितर विचारै ना॥
दीन्हें गज बकस महीप रघुनाथ राय,
याहि गज धोखे कहूं काहू देइ डारै ना।
याही डर गिरिजा गजाननको गोइ रही,
गिरितें गरेतें निज गोदतें उतारै ना॥

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत पै,
पावत न पार जा अनन्त गुन पूरे को।
कहैं पद्माकर, सुगालके बजावत ही,
काज करि देत जन जाचक जरूरे को॥
चन्दकी छटान जुत पन्नग फटान जुत,
मुकुट विराजै जटा जूटनके जूरे को।
देखो त्रिपुरारिकी उदारता अपार जहां,
पैये फल चारि फूल एक दै धतूरे को॥

ग्वाल कवि

आप मथुरा निवासी ब्रह्मभट्ट सेवारामके पुत्र थे। इनका जन्म-संवत् १८४८ में और मरण १९२८ में कहा जाता है। इनका कविता-काल सं० १८७९ से १९१८ तक है। आपके चार रीति-ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—(१) रसिकानन्द, (२) रसरंग, (३) कृष्ण-जूकी नखशिख और (४) दूषणदर्पण। इनके अतिरिक्त आपके दो ग्रन्थ और प्राप्त हैं—(१) हम्मीरहठ, (२) गोपीपचीसी। 'कवि-हृदय-विनोद' इनकी कविताओंका संग्रह है।

ग्वाल कवि विशेष प्रतिभा और योग्यतावाले कवि थे। इनकी भाषा स्पष्ट और सुव्यवस्थित है। देशाटनके कारण आपको कई भाषाओंका ज्ञान हो गया था और उनमें कविता भी कर लेते थे। उर्दू फारसीके भी शब्द आपकी रचनाओंमें पाये जाते हैं। आपकी भाषा साहित्यिक ब्रज है। पदावली इनकी सुगठित और कोमल है। कुछ कविताएं बाजारू हैं।

उदाहरणके लिये कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं—

दिया है खुदाने खूब खुसी करो ग्वाल कवि,
खाव पियो, देव लेव, यही रह जाना है।
राजा राव उमराव केते बादशाह भए,
कहां ते कहांको गए, लग्यो न ठिकाना है॥
ऐसी जिन्दगानीके भरोसे पै गुमान ऐसे!
देस देस घूमि घूमि मन बहलाना है।

आए परवाना पर चलै ना बहाना, यहां,
नेकी करि जाना, फेरि आना है, न जाना है।

पूर्बी भाषा

मोर पखा सिर ऊपर सोहै अधर बसुरिया राजत बाय।
गाय बजाय नचावे अँखियन करिया कमरी साजत बाय॥
ग्वाल लिए संग घाट बाटमें छरा छूइ मोर भाजत बाय।
हाय ननदिया का करिहौं मैं कहत बात जिय लाजत बाय।

लक्षण-कालकी अन्य रचनायें

अभीतक लक्षण ग्रंथकारोंका वर्णन होता रहा। अब उन कवियोंका वर्णन किया जाता है जिन्होंने रीति या लक्षण संबन्धी ग्रंथ न रचकर केवल प्रेम तथा कथात्मक रचनायें की हैं। इनमें बहुतोंने तो नीति सम्बन्धी रचनायें कीं। 'दोहा' और 'कुण्डलिया' में ये रचनायें हुई हैं। इनमें कुछ विशेष कवियोंको छोड़कर (घनानंद आदि) शेषको उच्च श्रेणीके कवियोंमें नहीं गिना जा सकता।

वृन्द

आप औरङ्गजेबके दरबारी कवि थे, किन्तु बादमें औरङ्गजेब-के पोता अजीमुश्शान ने—जो ब्रजभाषा और उर्दू का कवि तथा ढाकाका (बंगाल) सूबेदार था—इन्हें अपने यहां बुला लिया। इनका रचना-काल सं० १७६१ है। इसी संवत्में 'सतसई' प्रारंभ

की गई थी। इसमें नीति और शिक्षासे भरे दोहे हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि आपका जन्म सं० १७३० के लगभग हुआ होगा, किन्तु बिना किसी सुदृढ़ प्रमाणके ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता।

"वृन्दका जन्म मारवाड़में जोधपुर ताबाके मेड़ता गांवमें हुआ था। उनके वंशज आजकल मेड़तामें,जयपुरमें और किसनगढ़में रहते हैं।

सतसईके सिवा अन्य पद भी इनके बनाये हुए मिलते हैं। "भावपंचाशिका" नामकी एक और पुस्तक इनकी रची हुई सुननेमें आती है।

इनकी भाषा बड़ी सरल और बोलचालकी है। इनके दोहे लोगोंकी जबानपर रहते हैं। सभी विशेष रूपसे नीति विषयक हैं।

उदाहरणके लिये इनके कुछ दोहे उद्धृत किये जाते हैं—

उत्तम जनसों मिलत ही, अवगुन सों गुन होय।
घन संग खारे उदधि मिलि, बरसै मीठो तोय॥
करत करत अभ्यासके, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिलपर होत निसान॥
सब सों आगे होय कै, कबहुं न करिये बात।
सुधरे काज समाज फल, बिगरे गारी खात॥
ओछे नरके पेटमें, रहै न मोटी बात।
आध सेरके पात्रमें, कैसे सेर समात॥

आलम

ये जातिके ब्राह्मण थे किन्तु बादमें एक शेख नामकी रंगरे-जिनके प्रेमपाशमें फंसकर मुसलमान हो गये, इनके अन्य धर्म ग्रहण करनेके बारेमें एक बड़ी रोचक कहानी कही जाती है। एक दिन इन्होंने अपनी पगड़ी शेख नामकी रंगरेजिनको रंगनेके लिये दी। पगड़ीके एक कोनेमें नीचे लिखे दोहेका एक पद कागजकी पुड़ियामें बांध दिया—

'कनक छुरीसी कामिनी, काहेको कटि छीन।'

शेखने दोहा पढ़कर उसे इस प्रकार पूर्ण कर पगड़ी साफ कर ज्यों-की-त्यों गांठ देकर भेज दिया—

'कटिको कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन।'

बस फिर क्या था, दो प्रेमी-हृदय एक हो गये और परस्पर सहयोगसे कविता करने लगे।

इनका जन्म-सं० १७१२ के लगभग बतलाया जाता है। आप औरङ्गजेबके लड़के मुअज्जम शाहके साथ रहते थे। आपकी कविता श्रृंगारिक है। इनकी रचनाओंका संग्रह "आलम-केलि" के नामसे प्रकाशित हुआ है। 'माधवानल कामकंदला" नामकी एक प्रेतात्मक कथा है जो पद्यमें है।

इनकी भाषा साधारण चलती हुई और सरस है। प्रसाद और माधुर्यकी अच्छी पुट है। इनकी पदावली प्रेमोन्मत्तकारिणी हैं और उनमें मृदुलता और मंजुलता भरी है। इनपर मुसलमानों

का भी काफी रंग है। उदाहरणके लिये कुछ पद नीचे दिये जाते हैं —

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल कांकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी वह बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥
आलम जौनसे कुञ्जनमें करी केलि तहां अब सीस धुन्यो करैं।
नैननमें जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं॥

दाने की न पानीकी, न आवै सुध खानेकी,
थांगली महबूबकी अराम खुसखाना है।
रोज ही से है जो राजी यारकी रजाय बीच,
नाजकी नजर तेज तीर का निशाना है॥
सूरत चिराग रोशनाई आशनाई बीच,
बार बार बरै बलि जैसे परवाना है।
दिलसे दिलासा दीजै, हालकी न ख्याल हूजै,
बे खुद फकीर वह आशिक दिवाना है।

घनानन्द

ब्रज भाषाके उत्कृष्ट कवियोंमें सुशोभित घनानन्द जातिके कायस्थ और दिल्लीके बादशाह मुहम्मद शाहके मीरमुंशी थे। इनका जन्म लगभग सं० १७४६ और मृत्यु सं० १७९६ की नादिर शाही हमलेमें हुई। अपने प्रारम्भिक जीवनमें आप 'अय्याश' तबीयतके आदमी थे। कहा जाता है कि आप सुजान नामकी

वेश्यापर आसक्त थे। एक दिन बादशाहने इनकी प्रशंसा सुनकर इन्हें गानेको कहा। इन्होंने बहुत टालमटोल किया। बादमें सभासदोंकी सलाहसे सुजान दरबारमें लाई गई। बस फिर क्या था। इन्होंने अलापना शुरू किया। सभी लोग मुग्ध हो गये, किन्तु बादशाह इस प्रसन्नताके साथ-साथ क्रोधित भी हुआ, क्योंकि गाते समय घनानन्दजी वेश्याकी ओर मुंह किये थे और बादशाहकी ओर पीठ। बादशाहने इन्हें निकाल दिया। इन्होंने सुजानसे साथ चलनेको कहा किन्तु वह साथ न गई फिर इन्हें वैराग्य हो गया और वृन्दावनमें आकर वैष्णव होकर भगवत भजन करने लगे। नादिरशाहके हमलेके समयमें आप यहीं यवनों द्वारा मारे भी गये।

आपके रचित ग्रन्थ ये हैं--(१) सुजान सागर, (२) विरह-लीला, (३) कोकसार, (४) रसकेलिवल्ली और (५) कृपाकाण्ड। इनके सिवा आपके फुटकर पद कवित्त-सवैया बहुत पाये जाते हैं। इनमें विशेष रूपसे भगवान श्रीकृष्णजीकी लीलाओंका वर्णन है।

इनकी भाषा शुद्ध और साहित्यिक ब्रजभाषा है। इसमें शिथिलता या मिलावटका नाम तक नहीं है। प्रौढ़ और माधुर्य से परिपूर्ण है। प्रेमसे परिप्लावित है। विशेषकर वियोग और शृंगार हीका वर्णन है। आपकी बराबरी व्रजभाषाके विरले ही कवि कर सकते हैं। इनके भाव स्वाभाविक गम्भीर और कोमल हैं। इनके कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं—

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि नेहको तोरिये जू।
निरधार अधार दै धार मझार दई गहि बांह न बोरियै जू॥
घन आनन्द आपने चातकको गुन बांधि कै मोह न छोरियै जू।
रस प्यायके ज्याय बढ़ायकै आस विसास मैं क्यों विष घोरियै जू॥

तब तौ दुरि दूरहिते मुसुकाय बचायके औरकी दीठि हंसे।
दरसाय मनोजकी मूरति ऐसी रचायकै नैननमें सरसे॥
अब तौ उरमांहि बसाय के मारत, ए जू विसासी ! कहा धौं बसे?
कछु नेह निबाहि न जानत है, तौ सनेहकी धारमें काहे धंसे ?

महाराज विश्वनाथ सिंह

आप रीवां राज्यको सुशोभित करनेवाले महाराज थे। आपका राजत्वकाल सं० १७९८ से १७९७ तक है। आप राम-भक्त थे। इनकी रचनाओंमें राम-भक्तिकी पूर्ण झलक मिलती है। इनकी प्रशंसामें कवियोंने कई ग्रंथ रचे हैं और स्वयं भी आप उच्चकोटिके कवि थे। आपको रची हुई पुस्तकें ये हैं— (१) उत्तमकाव्य-प्रकाश, (२) गीता रघुनन्दनशतिका, (३) रामायण (४) गीता रघुनन्दन प्रामाणिक, (५) रामचन्द्रकी सवारी, (६) आनन्द रामायण, (७) ककहरा, (८) विनय-पत्रिकाकी टीका, (९) कबीर-बीजककी टीका, (१०) संगीत रघुनन्दन आदि तीस पुस्तकें हैं। आप रामोपासक होते हुए भी निर्गुणपंथीका भी विशेष आदर करते थे। कबीरपर आपने अनुमानतः सबसे

अधिक प्रकाश डाला है और उन्हींका अनुकरण कर 'रमैनी' भी लिखा है।

आप हिन्दीके प्रथम नाटककार हैं। यह एक बड़े महत्वकी बात है। "आनन्द रघुनन्दन" नाटक हिन्दीका सर्व प्रथम नाटक है।

इनकी भाषा स्पष्ट तथा परिमार्जित है। रचनायें विशेषकर वर्णनात्मक और उपदेशात्मक हैं। ब्रज भाषा प्रधान है। अवधी-का भी पुट पाया जाता है।

इनकी कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं—

उठो कुंअर दोउ प्रान पियारे।
हिमरितु प्रात पाय सब मिटिगे नभसर पसरे पुहकर तारे॥
जगबन महं निकस्यो हरषित हिय बिचरन हेत दिवस मनि यारे।
विश्वनाथ यह कौतुक निरखहु रबिमनि दसहु दिसिनि उजियारे॥

नारिनकी जु सलाह करै अरु भाइन मन्त्री स्वतन्त्र बनावै।
बैरके चाकर राखे रहै और अधर्मकी राह सदा मन लावै॥
मंत्री कह्यो हित मानै नहीं अरु साहको सासन नाम न आवै।
भाखत हैं विसुनाथ ध्रुवै कछु कालमें भूप सुराज गंवावै॥

भक्त नागरीदास

इस नामके कई भक्त कवि ब्रजमें हो चुके हैं किन्तु जिन भक्त नागरीदासका यहांपर उल्लेख है ये कृष्णगढ़ (राजपूताना)

के महाराज सांवतसिंह हैं। इनका जन्म सं० १७५६ में हुआ था। घरेलू झगड़ा-फसादके कारण आप अपने पुत्रको राज्याधिकार देकर वृन्दावन चले आये। आपकी मृत्यु-सं० १८२१ में हुई। वृन्दावनमें इनकी स्त्री 'बणीठणी' भी साथ ही रहती थीं। भक्त कवियोंमें आपकी रचनाएं शायद सबसे अधिक हैं। आपकी कुल छोटी बड़ी ७५ पुस्तकें हैं। इनमें दो पुस्तकें 'बैनविलास' और 'गुप्तरस-प्रकाश' अप्राप्य हैं। कुछके नाम ये हैं—(१) सिंगारसार, (२) पदसंग्रहमाला, (३) कृष्ण-जन्मोत्सव कवित्त, (४) बालविनोद, (५) बनविनोद, (६) भक्तिसार, (७) बिहार-चन्द्रिका, (८) फाग-गोकुलाष्टक, (९) तीर्थानन्द, (१०) पदप्रबोधमाला आदि।

इनकी भाषा सरस और चलती है। कवित्तोंकी भाषामें पदोंकी तरह चलतापन नहीं है। इनकी शैलीमें भावोंकी नवीनता हैं। समयानुकूल फारसीका भी रंग आपपर पड़ा है।

कविताके दो उदाहरण दिये जाते हैं—

अन्तर कुटिल कठोर भरे अभिमानसों
तिनके गृह नहिं रहैं सन्त सनमानसों॥
उनकी संगति भूलि न कबहूं जाइये।
ब्रज नागर नन्दलाल सु निसिदिन गाइये॥
जामेरस सोई हर्‌यो, यह जानत सब कोय।
गौर स्याम द्वै रंगबिन, हर्‌यो रंग नहिं होय॥
इश्क चमन महबूबका, जहां न जावैं कोय।
जावे सो जीवे नहीं, जिये सो बौरा होय॥

गिरधर कविराय

जनतामें बहुत प्रसिद्ध कवियोंमें गिरधर हैं। कोई भी ऐसा ग्रामीण न होगा जो इनकी कुण्डलियाकी दो एक पंक्तियां न जानता हो। इनके विषयमें कुछ विशेष पता नहीं चलता किन्तु नामसे जाना जाता है कि आप जातिके भाट थे। इनका जन्म सं० १७७० माना जाता है।

इनकी भाषा सरल तथा स्पष्ट है। उसमें अलंकार या काव्योचित उक्तिवैचित्र्य भी नहीं पाया जाता। इनकी ख्यातिका मुख्य कारण यह है कि ये गृहस्थोंके घरकी बात कहते हैं जिसे प्रायः लोग जानते हैं। भाषाका 'टीमटाम' इनमें नहीं पाया जाता है। भाव सीधे-सादे होते हैं। इन सबके होते हुए भी आपकी रचनामें स्वाभाविकता तथा चलतापन है।

कहा जाता है कि इनकी मृत्युके पश्चात् कुछ कुण्डलियोंकी रचना इनकी देवीजीने की थीं और उनमें 'सांई' शब्दका प्रयोग किया है।

दो कुण्डलियां नीचे दी जाती हैं—

साईं अवसरके पड़े, को न सहै दुख द्वन्द्व।
जाय बिकाने डोम घर, वै राजा हरिचन्द॥
वै राजा हरिचन्द करें मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी भेष फिरैं अरजुन बलधारी॥
कह गिरधर कविराय, तपै वह भीम रसोई।
को न करैं घटि काम, परे अवसरके सांईं॥

लाठीमें गुन बहुत है, सदा राखिये संग।
गहिर नदी नारा जहां, तहां बचावै अंग॥
तहां बचावै अंग, झपटि कुत्ता कहं मारै।
दुश्मन दावागीर होय, तिनहूंको झारै॥
कह गिरधर कविराय, सुनो हो धूरके बाठी।
सब हथियारन छांड़ि, हाथ यह लीजै लाठी॥

गोकुलनाथ, गोपीनाथ, और मणिदेव

हिन्दी साहित्यमें इन तीन विद्वानोंका नाम सदा एक साथ लिया जाता है। इन तीनोंने मिलकर महाभारत और हरिवंश-पुराणका अनुवाद विविध छन्दोंमें किया है। यह महाग्रन्थ लगभग २००० पृष्ठोंका है और अपने ढंगका निराला है। इतना बड़ा ग्रन्थ होनेपर भी इसमें कहीं शिथिलता नहीं आई है। रचना साहित्यिक और सुन्दर है। इस महाग्रन्थमें जिसने जितना लिखा है उसका नाम भी दिया गया है। यह ग्रंथ लगभग ५० वर्षमें समाप्त हुआ था। इसका रचना काल सं १८३० से १८८४ तक माना जाता है।

ये तीनों कवि काशीमें रहते थे और वहीं महाराज उदितनारायणसिंहकी आज्ञासे इसकी रचना हुई थी।

प्रथम दो कवि तो प्रसिद्ध कवि रघुनाथ बन्दीजनके पुत्र तथा पौत्र थे और मणिदेव भरतपुर रियासतके जहानपुर ग्रामके रहने-

वाले थे जो अपनी विमातासे रुष्ट होकर काशी चले आए और गोकुलनाथके यहां रहने लगे। सं० १६२० में इनकी मृत्यु हुई।

गोकुलनाथने महाभारतके अतिरिक्त और भी ग्रन्थ रचे हैं–

(१)चैत चंद्रिका, (२) गोविन्द सुखदविहार, (३) राधाकृष्ण विलास, (४) राधा नखशिख,(५) नाम रत्नमाला, (७) सीताराम गुणार्णव, (९) अमरकोष भाषा, (८) कवि मुखमण्डन। चेत चन्द्रिका अलंकारका ग्रन्थ है। इसमें काशिराजकी वंशावली भी है। राधाकृष्ण-विलास रस ग्रंथ है। कवि मुख-मण्डन अलंकार सम्बन्धी ग्रंथ है। इन सबसे पता चलता है कि आप कितने जबर्दस्त कवि थे। इनका कविता-काल सं० १८४० से १८७० तक कहा जाता है। यहांपर तीनों कवियोंकी रचनाओंका उदाहरण दिया जाता है:–

दुर्ग अति ही महत् रक्षित भटनसों चहुंओर।
ताहि घेर्‌यो शाल्व भूपति सेन लै अति घोर॥
एक मानुष निकसिबेकी रही कतहुं न राह।
परी सेना शाल्व नृपकी भरी जुद्ध उछाह॥

(गोकुलनाथ)

सर्व दिशिमें फिरत भीषमको सुरथ मन-मान।
लखे सब कोउ तहां भूप अलातचक्र समान॥
सर्व थर सब रथिन सों तेहि समय नृप सब ओर।
एक भीषम सहस सम रन जुरो है तंह जोर॥

(गोपीनाथ)

बचन यह सुनि कहत भो चक्रांग हंस उदार।
उड़ौगे ममसंग किमि तुम कहहुसो उपचार ॥
खाय जूठो पुष्ट, गर्वित काग सुनि ये बैन।
कह्यो जानत उड़नकी शत रीति हम बल ऐन ॥
(मणिदेवी)

ठाकुर

इस नामके तीन कवि हुए हैं। इनमें दो असनीके ब्रह्मभट्ट थे और एक बुन्देलखण्डके कायस्थ। तीनोंकी कवितायें ऐसी मिलती जुलती हैं कि इनका भेद करना कठिन है। तीसरे ठाकुरकी भाषामें बुन्देलखण्डी कहावतें, मुहावरे आदि के होनेसे कुछ भेद मालूम हो जाता है।

असनीवाले प्राचीन ठाकुर

इनका कोई रचित ग्रन्थ नहीं प्राप्त है। ये लगभग १७०० ई० में थे। इनके कुछ फुटकर प्रेमसे भरे हुए कवित्त सवैये मिलते हैं। भाषा साफ-सुथरी है। आप रसिक कवि थे। नीचे एक पद दिया जाता है--

सजि सूहे दुकूलन विज्जुछटासी अटान चढ़ी घटा जोवति हैं।
सुचिती ह्वै सुनैं धुनि मोरनकी, रसमाती संजोग संजोवति हैं ॥
कवि ठाकुर वै पिय दूरि बसैं, हम आंसुनसों तन धोवति हैं।
धनि वै धनि पावसकी रतियां पतिकी छतियां लगि सोवति हैं ॥

असनीवाले दूसरे ठाकुर

ये ऋषिनाथ कविके पुत्र थे। वास्तवमें इनके पूर्वज गोरखपुर जिलेके कुलीन ब्राह्मण थे, किन्तु एक बार मझौलीके राजाके यहां इनके पूर्वज देवकीनन्दनने भाटोंकी तरह कविता सुनाकर कुछ पुरस्कार लिया। इसपर लोगोंने इन्हें जाति-च्युत कर दिया। इन्होंने असनीमें आकर एक भट्टकी कन्यासे विवाह कर लिया और यहीं रहने लगे। इन्हींके वंशमें ठाकुर हुए थे।

संवत् १८६१ में इन्होंने 'सतसई-बरनार्थ' नामकी 'बिहारी-सतसई' की एक टीका बनाई। इनका कविता-काल १८६० माना जाता है। ये भी बड़ी सरस कविता करते थे। आप बड़े प्रेमी जीव थे। एक पद दिया जाता है—

प्रात झुकामुकि भेष छिपाय कै गागर लै घरतें निकरी ती।
जानि परी न कितीक अबार है, जाय परी जहं होरी धरी ती॥
ठाकुर दौरि परे मोहिं देखिकै, भागि बचीरी, बड़ी सुघरी ती।
बीर की सौं जु किवार न देऊं तौ मैं होरिहारन हाथ परी ती॥

तीसरे ठाकुर (बुन्देलखण्डी)

ये जातिके कायस्थ थे और इनका पूरा नाम लाला ठाकुरदास था। इनके पूर्वज काकोरी जिला लखनऊके रहनेवाले थे। ठाकुरके पिता अपनी ससुराल 'ओरछा' में रहते थे और यहीं सं० १८२३ में इनका जन्म हुआ। आप जैतपुर नरेशके दरबारमें

JAWAHIR · LAL · MUZA
II YEAR · 1950-51

रहते थे। वहींपर इनका बड़ा नाम हुआ और बुन्देलखण्डमें यश फैलने लगा। बांदाके हिम्मत बहादुर गोसांईके दरबारमें भी इनका अच्छा मान होता था। इनकी मृत्यु लगभग सं० १८८० में हुई।

ठाकुर बड़े उच्च विचारके कवि थे। ये 'लकीरका फकीर' होना ठीक नहीं समझते थे। इनकी कविताओंमें सुन्दर कल्पना दीख पड़ती है। बोलचालकी भाषामें भावोंको रखना ही इनका उद्देश्य था। शब्दाडम्बरसे सदा दूर ही रहते थे। इनकी भाषा सुव्यवस्थित स्पष्ट और मुहाविरेदार है। इनका एक पद नीचे दिया जाता है।

अपने अपने सुठिगेहनमें चढ़े दोऊ सनेहकी नाव पै री।
अंगनानमें भींजत प्रेम भरे, समयो लखि मैं बलि जांव पै री॥
कहे ठाकुर दोउनकी रुचिसों रंग ह्वै उमड़े दोउ ठांव पै री।
सखी, कारी घटा बरसै बरसाने पै, गोरी घटा नन्द गांव पै री॥

बाबा दीनदयाल गिरि

आपका जन्म सं० १८५९ में काशीजीमें एक पाठक कुलमें हुआ था। जब इनकी अवस्था ५-६ वर्षकी थी तभी इनके माता पिता इन्हें महन्त कुशलगिरिको—जो देहली विनायक स्थानके अधिकारी थे—सौंप दिया। महन्तजीके मरनेपर ये मौठली गांव-वाले मठमें रहने लगे। बाबू गोपालचन्द (गिरधरदास) से इनका

बड़ा प्रेम था। आपकी मृत्यु सं० १९१५ में हुई। इनकी लिखी हुई पुस्तकें ये हैं—

(१) अन्योक्ति कल्पद्रुम, (२) अनुरागबाग, (३) वैराग्यदिनेश, (४) विश्वनाथ नवरत्न और (५) दृष्टान्त तरंगिणी।

बाबाजी सरल और भावुक कवि थे। इनकी अन्योक्तियां अनूठी हैं। इन्हें अमर कर देनेके लिये अन्योक्ति-कल्पद्रुम ही पर्याप्त है। भाषा आपकी प्रौढ़ है और उसपर इनका पूर्ण अधिकार जाहिर होता है। इनकी भाषा पूर्वी हिन्दीसे भी प्रभावित है। यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा आदिके कलाकौशल सूचक चमत्कार भी पाये जाते हैं। कहीं-कहीं आध्यात्मवादकी भी काफी झलक मिलती है। उदाहरणके लिये नीचे कुछ नमूने दिये जाते हैं—

देखो पथिक उघारिकै, नीके नैन विवेक।
अचरज है यह बागमें, राजत है तरु एक॥

राजत है तरु एक, मूल उरध अध साखा।
द्वै खग तहां अचाह,एक इक बहु फल चाखा॥

बरनै दीनदयाल, खायसी निबल विसेखो।
जो न खाय सो पीन, रहै अति अद्‌भुत देखो॥

पराधीनता दुख महा, सुख जगमें स्वाधीन।
सुखी रहत सुक बन विष, कनक पींजरे दीन॥

इक बाहर इक भीतरैं, इक मृदु दुहुं दिसि पूर।
सोहत नरजग त्रिविध ज्यों, बेर बदाम अंगूर॥

गिरधरदास

आप प्रातःस्मरणीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके पूज्य पिता थे। इनका जन्म सं० १८६० में काशामें हुआ और मृत्यु सं० १६१७ में हुई। जिस अवस्थामें अंग्रेजीके महाकवि शेक्सपियरने काव्य जगतमें प्रथम पैर रखा था, उसी अवस्थामें आपने ४० ग्रन्थोंकी रचना की। इसीसे इनकी विलक्षण प्रतिभाका प्रमाण मिलता है। कवितामें ये अपना नाम गिरिधरदास, गिरधर, गिरिधारन, रखते थे। आप केवल कवि ही न थे वरन् काशीके एक प्रतिष्ठित तथा धनिक रईस थे। आपने एक 'सरस्वतीभवन' नामका पुस्तकालय खोला था जिसमें साहित्यिक पुस्तकोंका जमघट रहता था, इनकी कुल पुस्तकोंका पता नहीं। १८ पुस्तकोंका पता चला है उनमें कुछके नाम दिये जाते हैं—(१) जरासंध बध, (२) महाकाव्य, (३) भारतीभूषण, (अलंकार) (४) भाषा व्याकरण, (पिंगल) (५) रस रत्नाकर, (६) ग्रीष्म वर्णन, (७) मत्स्यकथामृत, (८) बाराह कथामृत, (९) नहुष नाटक आदि। विशेष रचनायें पौराणिक हैं।

इनकी रचनाओंमें हम दो प्रकारकी शैली पाते हैं। भक्तिपथकी रचनाओंमें सरल और साधारण पद्य और महाकाव्य आदिमें यमक, अनुप्रास आदिका चमत्कार दिखाई पड़ता है। जरासन्धबध अपूर्ण है। यह केवल ११ सर्गतक लिखा गया है किन्तु अपने ढंगका अनोखा है। इसमें अनुप्रास और यमकका

अच्छा चमत्कार है। नहुष नाटक लिखकर आपने नाटक-कला का मार्ग सुगम बना दिया। आपकी भाषा ब्रज है और उसमें प्रौढ़ता और परिपक्वता खूब है। कुछ पद्य नीचे दिये जाते हैं—

(अनुप्रास देखिये)

जगह जड़ाऊ जामें जड़े हैं जवाहिरात,
जगमग जोति जाकी जगमें जमति है।
जामे जदुजानि जान प्यारी जात रूप ऐसी,
जगमुख ज्वाल ऐसी जोन्हसी जगति है॥

'गिरधरदास' जोर जबर जवानीको है,
जोहि जोहि जलजाहू जीवमें जकति है।
जगतके जीवनके जियको चुराये जोय,
जोय जोषिताको जेठ जरनि जरति है॥

बात न क्यों समुझावति हौ मोहिं मैं तुमरो गुन जानति राधे।
प्रीति नई गिरिधारन सों भई कुंजमें रीतिके कारन साधे॥
घूंघट नैन दुरावन चाहति दौरति सो दुरि ओट है आधे।
नेह न गोयो रहै सखि लाज सों कैसे रहे जल जालके बांधे॥

जाग गया तब सोना क्या रे।
जो नर तन देवनको दुर्लभ सो पाया अब रोना क्या रे॥
ठाकुरसे कर नेह अपानर इन्द्रिनके सुख होना क्या रे।
जब वैराग्यज्ञान उर आया तब चांदी औ सोना क्या रे॥

दारा सुवन सदनमें पड़के भार सबोंका ढोना क्या रे।
हीरा हाथ अमोलक पाया कांच भावमें खोना क्या रे॥
दाता जो मुख मांगा देवे तब कौड़ी भर दोना क्या रे।
गिरिधर दास दर पूरेपर मीठा और सलोना क्या रे।

नीतिके दोहे

धनहिं राखिये विपति हित, तिय राखिय धन त्यागि।
तजिए गिरिधर दास दोउ, आतमके हित लागि॥
लोभ सरिस अवगुन नहीं, तप नहिं सत्य समान।
तीरथ नहिं मन शुद्धि सम, विद्या सम धन आन॥

उपसंहार

वीरगाथा-काल, भक्ति-काल तथा रीति-कालको एक सरसरी निगाहसे देखनेपर पता चलता है कि प्रत्येक कालमें पूर्व-कालकी अपेक्षा एक नई धारा विशेष रूपमें बहती रही। जिस प्रकार हम महाकवि चन्दका अभिमान करते हैं उसी तरह सूर तुलसीदासके सामने नतमस्तक हो अपनेको सभ्य संसारमें गौरवान्वित समझते हैं। ये दोनों महात्मा अकेले ही हिन्दी साहित्य को पूर्ण बनानेके लिये समर्थ हैं। इनके प्रादुर्भावसे हम क्या नहीं पाये और इनके अभावसे हम क्या न खोते! यह स्पष्ट है।

रीतिकालके विद्वान, पण्डितवर कवियोंने भी अपनी शक्तिभर साहित्यकी सहायता की है। इनकी रचनाओंने साहित्यके अङ्ग

विशेषको पूरा किया। इस कालमें लक्षण ग्रंथोंका यद्यपि आधिक्य था, किन्तु इसके साथ ही साथ हमें आदिकाल तथा भक्तिकालकी भी एक पतली धारा दीख पड़ती है।

गद्य साहित्य

रीतिकालमें गद्य अछूता नहीं रहा। कुछ लोगोंने गद्य लिखनेमें भी लेखनी उठाई। यह दूसरी बात है कि वे आजकी तरह संयत, शुद्ध, परिमार्जित गद्य न लिख सके हों। यहांपर उसका विशेष उल्लेख न करके इसकी पूर्ण विवेचना 'आधुनिककाल' हीमें की जायगी।

आधुनिक-काल

(गद्य-धारा)

[संवत् १६०० से १६६०]

मनुष्यकी स्वाभाविक वाणी कवित्त, सवैयोंमें नहीं होती। बालक जब बोलता है तो गद्य हीमें बोलता है। बस इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि हिन्दीके गद्यका विकास पद्यके साथ-साथ चलता रहा। जब चन्दबरदाईने प्रसिद्ध 'रासो' को पद्यमें लिखा तो आपसके पत्रव्यवहारमें गद्य अवश्य प्रयोगमें लाया जाता रहा होगा। हां, इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि जैसे उस समयका पद्य साहित्य आजकी तरह आदर्श और उन्नत भाषायुक्त नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार तात्कालिक गद्य भी आदर्श नहीं कहा जा सकता।

अब विक्रमकी १६ वीं शताब्दीके पूर्वके गद्य-साहित्यपर एक सरसरी निगाह डालते हुए, गद्यके असली विकास और परिवर्द्धनकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित किया जायगा।

गद्य-साहित्यका विवेचन करनेके पूर्व, इतना बतला देना जरूरी है कि इस कालमें भी और कालकी तरह केवल एक ही नहीं वरन् और भी धाराएं थीं। गद्य-कालमें गद्यके साथ

पद्य भी चलता रहा। हां, इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि विक्रमकी इस बीसवीं शताब्दीमें गद्यका ही बोलबाला रहा है। साहित्यके वे अङ्ग, उपांग जो गद्य हीमें पूरे किये जा सकते हैं, इसी कालमें पूरे किये गये। उपन्यास, कहानी, समालोचना निबन्ध आदिका प्रावल्य इसी कालमें हुआ।

दूसरी बात जो जानने योग्य है वह यह है कि पद्यका भी रूप अब बदल गया। रीति या भक्तिकालकी प्रबल धारायें अब समाप्त हो गईं और बिहारी, देव, केशव और मतिराम आदि की नाजुक खयाली भी अब उड़नेमें असमर्थ हो गई। इस युगमें पद्य साहित्यका क्या रूप हुआ इसका उल्लेख पद्य धारामें किया जायगा।

गद्य-साहित्यकी पहली अवस्था

[संवत् १२३५—१९१३]

सबसे प्राचीन गद्यका उदाहरण हमें पृथ्वीराजके समयका मिलता है। सं० १२३५ के एक पत्रका कुछ अंश नमूनेके तौरपर नीचे दिया जाता है—

श्रीहरी एकलिंगो जयति।

श्री श्री चित्रकोट बाई साहब श्री पृथुकुवर बाईका वारण गाम मोई आचारज भाई रुसीकेसजी बांचजो अपन श्रीदली सुं श्री हजूरको बी खास रुका आयो है जो मारो भी पदाखाकी सीखबी है नेदली कोकाजी षेद है.........

कामा, फुल-स्टाप, सेमीकोलन, कोलन आदिका कहीं नाम निशान नहीं है। विराम आदिका कोई विचार नहीं था। फारसी के शब्द भी काफी प्रयोगमें आते थे।

वर्तमान हिन्दी-रूप

'श्रीहरि एकलिंगजीकी जय हो। मोई ग्राम-निवासी आचार्य भाई ऋषीकेशजीको चित्तौरसे बाई साहब श्रीपृथाकुंवरि बाईका संवाद बांचना। आगे भाई श्री लंगीरायजी श्री दिल्लीसे आये हैं और श्री दिल्लीसे हुजूरका खास रुक्का भी आया है जिससे मुझको भी दिल्ली जानेकी आज्ञा मिलती है। काकाजी अस्वस्थ है।'

इसके पश्चात् हमें जो गद्यका उदाहरण प्राप्त है, वह है गुरु गोरखनाथका। ये हठयोगी महात्मा थे। इनके लिखे हुए ग्रन्थ मिलते हैं। किसी-किसीमें समय भी दिया गया है। गोरखनाथ-की मृत्यु गोरखपुरमें हुई थी। इससे पता चलता है कि सं० १४०० के लगभग ये महात्मा वर्तमान थे। कुछ लोगोंकी धारणा है कि गोरखनाथ सं० १४०० के पूर्व हुए थे और जो ग्रन्थ मिलते हैं वे उनके शिष्योंके द्वारा लिखे गये थे। इसलिये कुछ निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। हम इसे गोरखनाथ हीकी हिन्दी कहेंगे जबतक कोई पक्का प्रमाण इसके विरुद्ध न प्राप्त हो जाय। इनकी भाषा ब्रज ही है। उदाहरणके लिये कुछ पंक्तियां दी जाती है—

सम्वत् १४०७

"स्वामी तुम्है तो सतगुरु अम्है तो सिष। सबद एक पूछिबा दया करि कहिबा,मनि न करिबारोस"

इसके पश्चात् सम्वत १६०० में गोस्वामी विट्ठलनाथने 'श्रृंगार रस मण्डन' लिखा और उनके पुत्र गोकुलनाथने "८४ वैष्णवोंकी वार्ता" और "२५२ वैष्णवोंकी वार्ता" १६४८ में लिखी। इन पुस्तकोंमें ब्रज भाषा ही प्रधान है। इसमें हमें कोई साहित्यिक सुव्यवस्थित स्वरूप नहीं मिलता। उदाहरणके लिये प्रत्येककी कुछ पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं।

विट्ठलनाथ १६००

प्रथमकी सखी कहत है, जो गोपीजनके चरणविषै सेवककी दासी करि जो इनके प्रेमामृतमें डूबके मन्दहास्यने जीते हैं अमृत समूहता करि निकुञ्ज विषै श्रृंगार रस श्रेष्ठ रसना कीनी सो पूर्ण होत भई।

गोकुलनाथ १६४८

श्रीगुसाईंजीके सेवक एक पटेलकी वार्ता। सो वह पटेल वैष्णव राजनगरमें रहे तो हतो।

और भी देखिये—

वैष्णवने कही "जो तेरो शास्त्रार्थ करनो होवै तो पण्डितनके पास जा, हमारी मंडलीमें तेरे आयबेको काम नहीं।"

इन पुस्तकोंके अतिरिक्त बहुत-सी टीकाएं भी की गईं। उनकी भी भाषा बे-सिर-पैरकी ब्रज है। उनमें पण्डिताऊपन दीख पड़ता है। वर्तमान साहित्यिक हिन्दी जिसे हम खड़ी बोली कहते हैं उनका स्वरूप पद्य काव्यमें तो खुसरोमें (संवत् १३१२-१३८२) पाया जाता है और गद्यमें इसका प्रारम्भिक रूप गंगकृत 'चन्द छन्द बरननकी महिमा" में पाया जाता है। यह पुस्तक केवल १६ पृष्ठकी है और सम्वत् १६२९ में लिखी गई थी। इसके पश्चात् खड़ी बोलीका रूप हम जटमल कवि कृत "गोरा बादलकी कथा" में पाते हैं। इसका रचना काल सम्वत् १६८० माना जाता है।

गंग

इतनो सुनकेपात शाहजी श्रीअकबरशाहाजी आदसेर सोना नरहरदास चारनको दिया।

जटमल

हे बात कीसा चित्तौड़ गड़के गोरा बादल हुआ है जीनकी बार्ताकी किताब हींदवीमें बनाकर तैयार करी है .....ये कथा सोलहसे अस्सीके सालमें फागुन सुदी पूनमके रोज बनाई।

सम्वत् १६८० में "गोरा बादल" की रचनाके बाद हमें खड़ी बोलीका कुछ विशेष रूप प्राप्त नहीं है। ब्रजभाषा गद्यमें इधर-उधरकी टीकाएं प्राप्त हैं जिनकी भाषाको हम साहित्यिक नहीं कह सकते। वास्तवमें सिवा इन टीकाओंके ब्रजभाषाका कोई गद्य

प्राप्त नहीं है और आगे चलकर खड़ी बोलीके प्राबल्यसे ब्रज भाषामें गद्य रचना बन्द भी हो गई।

इसके पश्चात् २०० वर्षका समय विशेष उल्लेखनीय नहीं है। सम्वत् १६६० के लगभग चार लेखक हमारे सामने आते हैं, जो वास्तवमें खड़ी बोलीके प्रारम्भिक लेखक कहे जा सकते हैं। इन लोगोंकी रचनाओंमें उद्देश्य पाया जाता है। इनके हृदयमें तात्कालिक हिन्दी 'भाखा' या खड़ी बोली लिखनेका एक खास विचार पैदा हुआ। इनकी रचनाओंसे पता चलता है कि ये लोग खड़ी बोलीके प्रयोगके लिये बेचैन थे। इनके नाम ये हैं—

मुन्शी सदासुखलाल, इन्शा अल्ला खां, लल्लूजीलाल और सदल मिश्र।

लल्लूजीलाल और सदल मिश्रके विषयमें इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ये लोग विशेष रूपसे कलकत्ताके फोर्ट विलियम कालेजके प्रधान जान गिलक्राइस्ट द्वारा प्रेरित किये गये थे। इस कार्यमें इन लोगोंका कहांतक विशेष हाथ था हम नहीं कह सकते। कुछ भी हो चाहे पूर्व होसे गद्यमें लिखनेका विचार उन लोगोंके हृदयमें न रहा हो तिसपर भी प्रोत्साहित तथा प्रेरित होकर भी लिखने पर ये लोग यशके पात्र हैं।

मुन्शी सदासुखलाल

इनका दूसरा नाम 'नियाज' भी था। आप दिल्लीके निवासी थे। इनका जन्म सम्वत् १८०३ में और मृत्यु संवत् १८८१ में

हुई। ये कम्पनीके नौकर थे। वृद्धावस्थामें प्रयागमें रहने लगे थे। इन्होंने 'सुखसागर' नामक ग्रन्थ संस्कृतसे प्रभावित खड़ी बोलीमें लिखा। तत्सम शब्दोंके प्रयोगसे भाषाको साहित्यिक रूप दिया। इनके हृदयमें भाषाके प्रति कितना प्रेम था और उसकी कमीसे ये कितना दुःखी थे, इसका प्रमाण लीजिये -

'रस्मो रिवाज भाखाका दुनियासे उठ गया' इस वाक्यमें कितनी पीड़ा है। कितना हृदयद्रावक वाक्य है। इनकी हिन्दीका नमूना नीचे दिया जाता है—

'इससे जाना गया कि संस्कारका भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्षमें चाण्डालसे ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरन्त ही ब्राह्मणसे चाण्डाल होता है।'

इंशा अल्ला खां

ये उर्दूके प्रसिद्ध कवि तथा अरबी फारसीके अच्छे विद्वान् थे। इनके पिता कश्मीरसे आकर दिल्लीमें हकीम हुए और फिर मुर्शिदाबादके नवाबके यहां चले गये। यहीं इंशाका जन्म हुआ। आप वहांके प्रसिद्ध उर्दू कवियोंमें गिने जाते थे। नवाब सिराजुद्दौलाके मारे जानेके बाद ये दिल्ली चले गये और शाह-आलम द्वितीयके दरबारमें रहने लगे। मुगल राज्यके नष्ट प्रायः हो जानेपर आप लखनऊ चले गये। वहांपर इनका बड़ा सम्मान होता रहा। एक बार किसी कारणवश नवाबसे अनबन हो गई

इसलिये वेतन और सहायता आदिके बन्द हो जानेसे इनका बुढ़ापा बड़े कष्टसे बीता। इनकी मृत्यु सम्वत् १८७५ में हुई। सम्वत् १८५५ और १८६० के भीतर आपने "उदय भान चरित्र या रानी केतकीकी कहानी" हिन्दी गद्यमें लिखी। इनका उद्देश्य था कि गद्यकी भाषा ऐसी हो जिसमें न तो अरबी फारसीके शब्द हों और न उसमें गवारू शब्द हों। इसमें सन्देह नहीं कि उर्दू फारसीके विद्वान होनेके कारण इनके गद्यमें उर्दू, फारसीकी झलक और उर्दूकी टीमटाम व बनावटीपन दिखाई देता है। नीचे कुछ पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं।

'एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यानमें चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिये जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोलीका पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूलकी कलीके रूपमें खिले। बाहरकी बोली और गँवारी कुछ उसके बीचमें न हो।'

फारसीके ढंगका वाक्य विन्यास देखिये—

'सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूं अपने बनानेवालेके सामने जिसने हम सबको बनाया।'

'इस सिर झुकानेके साथ ही दिन-रात जपता हूं उस अपने दाताके भेजे हुए प्यारेको।'

लल्लूजीलाल

ये आगराके गुजराती ब्राह्मण थे। इनका जन्म सम्वत् १८[illegible] में हुआ। आप फोर्ट विलियम कालेजमें अध्यापक थे और वहीं

कालेजके प्रधानकी आज्ञासे सम्वत् १८६० में भागवत दशम-स्कन्धका हिन्दी गद्यमें अनुवाद किया। इस ग्रन्थका नाम "प्रेम सागर" है। इसमें विदेशी शब्दोंका समावेश तो नहीं है किन्तु ब्रजभाषाकी काफी मात्रा है। सदासुखलालकी तरह इनकी भाषा संस्कृत गर्भित नहीं है। इसमें सतुकान्त सानुप्रासिक शैलीका पूर्ण प्रभाव दीख पड़ता है।

लल्लूजीलालने उर्दू खड़ी बोली और ब्रजभाषामें गद्यकी पुस्तकें लिखीं। ये संस्कृत नहीं जानते थे। सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचीसी, शकुन्तला नाटक और माधोनल इनकी अन्य रचित पुस्तकें हैं। ये सब उर्दू हीमें हैं। सम्वत् १८६६ में आपने हितो-पदेशकी कहानियां ब्रजभाषामें लिखीं। इनकी कहानियां जनतामें खूब प्रसिद्ध हैं। आपने 'माधव विलास' और 'सभा विलास' नामक दो पद्यके संग्रह ग्रन्थ ब्रजभाषामें प्रकाशित किये। कल-कत्तेमें इनका एक प्रेस था जिसे सम्वत् १८८१ में पेन्शन लेनेके बाद साथमें ये आगरा लेते आये थे। इनकी हिन्दीका नमूना नीचे दिया जाता है—

'जिस काल ऊषा बारह वर्षकी हुई तो उसके मुखचन्द्रकी ज्योति देख पूर्णमासीका चन्द्रमा छबि-छीन हुआ, बालोंकी श्यामताके आगे अमावस्याकी अंधेरी फीकी लगने लगी। उसकी चीटीकी सटकाई लख नागिन अपनी केंचुली छोड़ सटक गई। भौंहकी बंकाई निरख धनुष धकधकाने लगा।'

सदल मिश्र

ये बिहार प्रान्तके आरा शहरके रहनेवाले थे और पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्माके वृद्ध प्रपितामह थे। ये भी लल्लूजीलालके साथ ही साथ फोर्ट विलियम कालेजमें काम करते थे। कालेजके प्रधानकी प्रेरणासे इन्होंने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। इनकी भाषामें ब्रजभाषाका विशेष प्रभाव नहीं है। कहीं कहीं उर्दूका ढंग पाया जाता है। व्यावहारिक और मुहावरेदार भाषाका प्रयोग आपकी रचनामें खूब दिखाई पड़ता है। जिससे इनकी भाषामें सजीवता दीख पड़ती है। इनकी भाषा साफ-सुथरी भी है। उर्दूको भी किसी न किसी रूपमें स्थान देनेके कारण इनकी भाषा संस्कृत गर्भित नहीं है। लल्लूजीलालकी तरह इनकी भाषा ढीली-ढाली नहीं है वरन इसमें सरसताके साथ-साथ ठोसपन और कुछ-कुछ गाम्भीर्य और 'वजन' भी है। नमूनेके तौरपर नीचे कुछ लाइनें उद्धृत की जाती हैं:—

'राजा बोले कि पिता मातासे प्राणीका एक जन्म ही तो होता है और सुख दुःख जो पूछो तो जब जैसा बदा तब तैसा, क्या राजा क्या प्रजा सब ही बड़े छोटेको होता है।'

'भगवानने तुमको बड़ी बुद्धि दी है। ईश्वर करें सदा योंही फूले फले रहो और यह हमारे यौतुकको हाथी घोड़े द्रव्य तुम्हारे ही घरमें रहें क्योंकि वनमें बसनेवाले तपस्वियोंको इनसे क्या काज'।

गद्यको पूर्णरूपसे स्थापित करनेवाले उपर्युक्त चारों लेखकों-में सदासुखलालका स्थान सर्वोच्च है। काल तथा भाषा दोनोंके विचारसे वेही आधुनिक गद्यके प्रधान प्रतिष्ठापक ठहरते हैं।

हम ऊपर देख चुके हैं कि 'हिन्दीकी प्रतिष्ठा सं० १८६० में पूर्णरूपसे हुई, किन्तु इसकी अविरलधारा तो वास्तविक रूपमें सं० १९१४ के बलवेके बाद होसे बही। बीचके इस ५० वर्षके समयमें हमें केवल इसाई पादरी ही दिखाई देते हैं। उन लोगोंने हिन्दी गद्यकी सहायतासे अपने धर्मका खूब प्रचार किया। सच-मुच हिन्दीको जीवित रखनेवाले इसाई पादरी ही कहे जा सकते हैं। आज दिन ऐसी समुन्नत दशामें भी हिन्दी पादरियोंकी ऋणी है। उन लोगोंने ५० वर्षतक हिन्दीसे काफी लाभ उठाया। सं० १८६६ में उन लोगोंने 'नये धर्म नियम' का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया और १८७५ में बाइबिलका अनुवाद किया। इसमें उर्दू या फारसी मिश्रित भाषा न थी वरन सदासुखलाल और लल्लूजी लाल हीका आदर्श सामने रखा गया था।

उदाहरणके लिये नीचे कुछ लाइनें दी जाती हैं—

'यीशु बपतिस्मा लेके तुरन्त जलके ऊपर आया और देखो उसके लिये स्वर्ग खुल गया और उसने ईश्वरकी आत्माको कपोतकी नाईं उतरते और अपने ऊपर जाते देखा और देखो यह आकाशवाणी हुई कि यह मेरा प्रिय पुत्र है जिससे मैं अति प्रसन्न हूं।'

इसके पश्चात् इन लोगोंके पैमफ्लेट छपते रहे और 'सिराम-

पुरमें इनका एक प्रेस था जहांसे छोटी छोटी पाठ्य पुस्तकें भी प्रकाशित होने लगीं। १८६३ में इस प्रेससे "दाउदकी गीतें" नामकी पुस्तक छपी। इसके साथ ही साथ छोटे-छोटे स्कूल भी इसाइयों द्वारा खुलने लगे। आगरा, मिर्जापुर, मुंगेर आदि इन लोगोंके मुख्य केन्द्र थे। सं १८६० में आगरेमें इन लोगोंकी एक "स्कूल-बुक-सोसाइटी" स्थापित हुई। इसके द्वारा सं० १८६४ में "इङ्गलैण्डका इतिहास' और १८६६ में मार्शमैन साहबके प्राचीन इतिहासका अनुवाद 'कथासार'के नामसे प्रकाशित हुआ। इस सोसाइटीसे "भूगोलसार" (रसायन प्रकाश) आदि अन्य पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं।

मिर्जापुरमें भी एक "आरफैन प्रेस" खुला जिससे भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं। कुछके नाम ये हैं—भूचरित्र, दर्पण, भूगोल विद्या, विद्या-सार आदि।

कई शहरोंमें छापेखाने खुल गये थे, इसलिये अंग्रेजी और बंगलाके पत्र भी निकलने लगे थे। इन्हींकी देखा-देखी राजा शिव-प्रसादने काशीसे 'बनारस अखबार' निकलवाया। इसकी भाषा विशेषकर उर्दू ही थी। क्योंकि उस समयमें उर्दूहीका प्राबल्य था। उर्दू पढ़ना लिखना शानके अन्दर दाखिल था। सं १६०७ में 'सुधाकर' नामका अखबार प्रकाशित हुआ। इसकी भाषा सुधरी हुई थी। प्रसिद्ध ज्योतिषी सुधाकर द्विवेदीका जन्म उसी दिन हुआ था जिस दिन 'सुधाकर'का प्रथम अङ्क प्रकाशित हुआ। इसी कारण इनका नाम सुधाकर रखा गया। सं० १६०६

में आगरेसे 'बुद्धिप्रकाश' नामक अखबार निकला। इसकी भाषा बहुत अच्छी होती थी।

सं० १६११ में एक आयोजन पत्र तैयार किया गया जिसके द्वारा गांवों और कस्बोंमें स्कूल खोलनेका प्रबन्ध किया गया और स्कूल खुले भी, किन्तु अब प्रश्न यह था कि भाषा हिन्दी होनी चाहिये या उर्दू। यहां इतना जान लेना आवश्यक है कि उर्दू-कचहरीकी भाषा स्वीकृत हो चुकी थी। स्कूलकी भाषाके द्वन्द्व-युद्धमें हिन्दीके समर्थक राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और राजा लक्ष्मणसिंह दिखाई पड़ते हैं। हिन्दीको लोग कड़ी भाषा कहकर अनुपयुक्त बतलाते थे।

गद्य-साहित्यकी दूसरी अवस्था

(सम्वत् १९१३—१९५७)

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द'

राजा साहबका जन्म काशीमें सं० १८८० में एक कुलीन वैश्यके घरमें हुआ था और मृत्यु १९५२ में हुई। आपके प्रति गवर्नमेंट सदा अच्छा भाव रखती थी। आप शिक्षा विभागके इन्सपेक्टर भी हुए। हिन्दी भाषाके प्रति इनका कितना उत्कट प्रेम था, यह सर्वप्रथम हिन्दी समाचार पत्र 'वनारस अखबार' से ही पता चलता है। इन्हें हिन्दीके लिये कितना परिश्रम करना पड़ा होगा इसका अन्दाजा लगा सकना कठिन है। जिस समय मुसलमानोंका ही प्राबल्य था और उर्दू को सर्वसाधारणकी पठित भाषा होनेके लिये उच्च पदाधिकारी मुसलमान रात-दिन चेष्टा कर रहे थे उस समय हिन्दीके हिमायती केवल राजा साहब ही थे। हिन्दीको कड़ी और गंवार भाषा कहकर जब मुसलमान बाजी मारनेको ही थे कि चतुर राजासाहबने हिन्दी कायम रखनेके लिये फौरन एक तीसरी भाषा 'हिन्दुस्तानी' का निर्माण किया। इसमें हिन्दी उर्दू का सम्मिश्रण था। हिन्दीके प्रचारार्थ आपने स्वयं कई पाठ्य पुस्तकें लिखीं और अपने मित्रोंसे लिखवाईं। राजा भोजका सपना, बीरसिंहका वृत्तान्त, आलसियोंको

कोड़ा इत्यादि इनकी रचित पुस्तकें हैं। इन सब पुस्तकोंमें चलती ठेठ हिन्दी है, किन्तु सं० १६१७ के बाद इनके जीवनकी धारा कुछ बदल सी गई और हिंदीके स्थानमें दिन प्रति दिन उर्दू फारसीके शब्दोंका बाहुल्य होने लगा। पता नहीं चलता कि ये उनके स्वतः विचार थे या कर्मचारियोंके दबावके कारण ऐसा हुआ। सम्बत् १६१७ के पश्चात् इतिहास, भूगोल आदि संबन्धी जितनी पुस्तकें इन्होंने लिखीं, सबमें उर्दू, फारसीकी भरमार है।

राजा साहबकी धारणा हिन्दी उर्दूको मिलानेकी जरूर मालूम होती है। इनकी भाषामें शहरीपन है। कहीं भी गंवारूपन नहीं मिलता। इनकी भाषामें इंशा, बालमुकुन्द गुप्त और प्रतापनारायण मिश्रकी तरह चुटकुलों और हास्योत्पादक वाक्योंका समावेश नहीं है।

इनकी भाषाका नमूना नीचे दिया जाता है—

'मुसलमान घमण्डके मारे अपने अधीन रअय्यतकी जबानमें बातचीत करना बेशक शर्मिन्दगी और बेइज्जतीका कारण समझते होंगे, लेकिन उनके महल हिन्दुओंकी लड़कियोंसे भरे थे। और उन्हें रात दिन काम ऐसे हिन्दुओंसे पड़ा करता था जो फारसीसे कम वाकिफ थे। बस यह घमंड धीरे धीरे कम हो गया, और अगर बिलकुल खत किताबत नहीं तो बोल चाल तो हिन्दुओंके साथ उनकी जबानमें जारी हो गई। शैर भी उनकी जबानमें एक अनोखापन दिखानेके लिये बनाने लगे।'

राजा लक्ष्मणसिंह

ये आगरेके यदुवंशी क्षत्री थे। इनका जन्म सम्वत् १८८३ में और मृत्यु १९५३ में हुई। आप हिन्दी, उर्दू, अङ्गरेजी, फारसी और बंगलाके अच्छे ज्ञाता थे। सम्वत् १९१४ के सिपाही-विद्रोह में इन्होंने अङ्गरेजोंकी सहायता की थी इसलिये सम्वत् १९२७ में (दिल्लीका प्रथम दरबार) आपको राजाकी उपाधि मिली। बीस वर्षतक आप प्रथम श्रेणीके डिपुटी कलेक्टर थे।

हिन्दी गद्यका जो आदर्श राजा लक्ष्मणसिंहने रखा और उसके लिये जो अथक परिश्रम आपने किया उसके लिये आप हिन्दी साहित्य प्रेमियोंके सदा पूज्य और आदरणीय रहेंगे। इनका सिद्धान्त था कि भाषा, साहित्य तथा समाज और सभ्यताका परस्पर एक बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध होता है। इसलिये हिन्दी-भाषामें संस्कृत भाषाका समावेश आवश्यक है और उर्दू, फारसीका सम्मिश्रण अनावश्यक ही नहीं वरन् हानिकर भी है।

हिन्दीके प्रति इनकी क्या धारणा थी इसका पता इनके लेखसे चलता है। राजा शिवप्रसाद और इनके सिद्धान्तोंमें जमीन आसमानका अन्तर था। देखिये ये क्या कहते हैं--'हमारे मतमें हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी न्यारी हैं। .... और न हम उस भाषाको हिन्दी कहते हैं जिसमें अरबी फारसी के शब्द भरे हों।'

साफ पता चलता है कि हिन्दीको आप उर्दू से कोसों दूर रखना चाहते थे।

संवत् १९१८ में आपने "प्रजाहितैषी" नामक अखबार आगरे से निकाला और १९१९ में शकुन्तला नाटकका अनुवाद खड़ी बोलीमें किया। संवत् १९३४ में आपने रघुवंशका भी अनुवाद खड़ी बोली हिन्दीमें किया। मेघदूतका भी आपने अनुवाद किया किन्तु वह पद्यमें है।

उदाहरणके लिये कुछ पंक्तियां नीचे दी जाती है—

'बेटी, सुन, जब तू रनवासमें बास पावे तब पतिका आदर और गुरुजनोंकी शुश्रूषा करियो, सौतोंमें सपत्नी भाव मत रहियो, सहेलीकी भांति टहल करियो, कदाचित पति तिरस्कार भी करे तोभी उसकी आज्ञाके बाहर मत हूजियो।'

'हे तपोवनके वृक्षो जिस शकुन्तलाने तुम्हारे सींचे बिना कभी जल भी नहीं पिया, और जिसे यद्यपि पुष्प, पत्रके गहने बनानेका चाव था परन्तु प्यारके मारे तुम्हारे फूल पत्ते कभी न तोड़े और बड़ा आनन्द सदा तुम्हारे मौरनेके समय माना इसको तुम पतिके घर जानेकी आज्ञा दो।'

ऋषि दयानन्द और पं० श्रद्धारामजी फुल्लौरी

आर्य समाजके प्रवर्तक ऋषि दयानन्दका जन्म सं० १८८१ में मोरवी शहरमें (काठियावाड़) हुआ था। आप ब्राह्मण कुलोद्भव थे। आजन्म ब्रह्मचारी रहकर आपने धर्म और समाजकी

सेवा की। धर्म और समाजके साथ ही साथ आपने हिन्दीकी भी बड़ी सहायता की। अपने हिन्दीके व्याख्यानों द्वारा सारे देशमें आपने उथल पुथल मचा दी। हिन्दीके प्रति आपका इतना उत्कट प्रेम था कि 'सत्यार्थप्रकाश' नामक ग्रंथ आपने हिन्दीमें लिखा। इनके कारण पंजाब आदि प्रान्तोंमें हिन्दीका खूब प्रचार हुआ। संवत् १९४० में आपका स्वर्गवास हुआ।

पं० श्रद्धारामजी फुल्लौरी आर्य समाजके प्रचारक थे। अपने व्याख्यानोंको तो आप हिन्दीमें कहते ही थे, साथ ही साथ कई पुस्तकें आपने हिन्दीमें लिखीं। सत्यामृतप्रवाह, तत्वदीपक, धर्मरक्षा, भाग्यवती आदि कई पुस्तकें आपने लिखीं। आप अपनेको और भारतेन्दु बाबूको हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ लेखक मानते थे।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

यों तो मुंशी सदासुखलालसे लेकर राजा लक्ष्मणसिंहके समयतकमें हिन्दीका काफी स्थान हो चुका था, किन्तु उस समयमें कुछ ऐसी कमी थी जो सदा खटकती थी। उर्दू, फ़ारसी ब्रज, पूर्वी और सानुप्रासिक आदिका झमेला अवतक लगा रहा किन्तु भाषाको आदर्श बनानेका श्रेय 'भारतेन्दु बाबू' को ही है। इनका जन्म काशीमें संवत् १९०७ में गोपालचन्द वैश्य, प्रसिद्ध कवि "गिरिधरदास" के घरमें हुआ। इनकी बुद्धि तीक्ष्ण थी और प्रतिभा कुशाग्र थी। आप केवल ३४ वर्ष इस संसारमें रहे। इनकी मृत्यु सं० १९४१ में हुई।

भारतेन्दुके उदय होनेसे हिन्दी-जगतका जो प्रकाशमान रूप हुआ, वह सदा अवर्णनीय है। बाबू साहबने स्वयं पुस्तकें रचकर और अपने मित्रोंसे लिखवाकर साहित्यकी अभूतपूर्व सेवा की। आपकी लिखी हुई कुल १७५ पुस्तकें हैं। पद्य, गद्य, नाटक, कहानी आदि सभी विषयोंपर आपने लेखनी उठाई और उनमें पूर्ण रूपसे सफलीभूत भी हुए।

अपने समयतक प्रचलित गद्यकी बुराइयोंको दूरकर आपने गद्य भाषाको प्रौढ़ परिमार्जित तथा निश्चित रूप देते हुए उसे चलती हुई और स्वच्छ बना दिया। गद्य भाषामें उर्दू, फारसी, ब्रज, पूर्वी, सानुप्रासिक ढंगोंको निकाल कर उसे शुद्ध साहित्यिक रूप दिया।

आपने केवल भाषा हीका नहीं वरन् साहित्यकी प्रगतिका भी सुधार किया। देश और कालकी परिस्थितिके अनुकूल आपने साहित्यके मार्गका भी नवीन रूपमें निर्माण किया। रीति-कालकी नाजुक खयाली और आशिक मिजाजीका समय न था, और न तो रासो आदिके उपयुक्त ही समय था। वास्तवमें अब वह समय था जो देशमें, समाजमें, धर्ममें तथा मानव व्यापारोंमें एक नवीन भाव पैदा करता। भगवानकी इच्छा हुई, भारतेन्दु प्रकट हुए और उन्होंने सबको नया पथ दिखाया। नये विचार, नये भाव तथा नये आदर्शको रखकर साहित्यमें भी आपने एक आश्चर्य जनक तथा अभूतपूर्व परिवर्तन किया।

देश-प्रेम, जाति-प्रेम, धर्म-प्रेम, तथा मानव-प्रेमका उच्चतम

आदर्श आपने अपनी रचनाओंमें रखा। इसका उदाहरण 'पद्य धारा' वर्णन करते समय दिया जायगा।

सम्वत् १६२२ में आप जगन्नाथपुरीकी यात्रामें गये और उसी यात्रामें आपका बंगला साहित्यसे परिचय हुआ। लौटनेपर आपने नाटकों (मौलिक तथा अनूदित) की रचना प्रारम्भ कर दी। सम्वत् १६२५ में आपने 'कवि-वचन-सुधा' नामका समाचारपत्र प्रकाशित किया और सम्वत् १६३० में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन (फिर हरिश्चन्द्र चन्द्रिकाके रूपमें) प्रकाशित किया। इसी वर्षको आप हिन्दीका सच्चा उदय मानते हैं। आपने अपनी एक पुस्तकमें नोट किया है कि 'हिन्दी नई चालमें ढली सन् १८७३ ई० में।" आपके परिश्रम तथा प्रोत्साहनसे लगभग पचीसों पत्र प्रकाशित होने लगे जिससे सारा उत्तरी भारत गूंज उठा। भारतेन्दु चमक उठे। कुछ पत्रोंके नाम नीचे दिये जाते हैं :—

काशी पत्रिका (काशी) भारतबन्धु (अलीगढ़) भारतमित्र (कलकत्ता) मित्रविलास (लाहौर), हिन्दी प्रदीप (प्रयाग) सारसुधानिधि (कलकत्ता), आनन्द कादम्बिनी (मिर्जापुर) सज्जनकीर्ति सुधाकर (उदयपुर), आर्यदर्पण (शाहजहांपुर) भारतेन्दु (वृन्दावन), शुभचिन्तक (जबलपुर) सदाचार मार्तण्ड (जयपुर)हिन्दोस्थान (इंगलैण्डमें सर राजा रामपाल सिंह द्वारा)

ऊपर हम कह चुके हैं कि इन्होंने नाटक आदिकी भी अनेकों रचनाएं उपस्थित कीं। अब कुछ नाटकोंका नाम यहांपर दिया जाता है—

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' कर्पूरमंजरी, सत्य हरिश्चन्द्र चन्द्रावली नाटिका, भारत दुर्दशा, अन्धेर नगरी इत्यादि। ये पौराणिक, सामाजिक और ऐतिहासिक नाटक हैं।

इतिहास भी इनसे अछूता नहीं रहा। काश्मीर कुसुम, बादशाह दर्पण आदि लिखकर आपने इतिहासका मार्ग प्रदर्शित किया।

आपके यहां साहित्यिक व्यक्तियोंका जमघट रहता था। जिनमें सभी विद्वान तथा अच्छे कोटिके लेखक और कवि थे जिनका वर्णन आगे किया जायगा। कुछके नाम ये हैं—पं० बदरीनारायण चौधरी, पं० प्रतापनारायण मिश्र, बाबू तोताराम, पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० राधाचरण गोस्वामी आदि।

भारतेन्दु बाबूमें दो प्रकारकी शैलियां दीख पड़ती हैं। प्रथम भावावेशशैली और दूसरी तथ्यनिरूपणकी शैली। भावावेशकी भाषामें छोटे-छोटे वाक्य होते हैं और पदावली सरस और बोलचालकी होती है। कुछ उर्दू फारसीकी चटनी भी रहती है। तथ्यनिरूपणकी शैलीमें संस्कृत गर्भित शब्द पाये जाते हैं। भाषा विशेष जोरदार होती है। उदाहरणके लिये कुछ पंक्तियां नीचे उद्धृत की जाती हैं।

भावावेश

'झूठे, झूठे, झूठे ! झूठे ही नहीं विश्वास घातक। क्यों इतनी छाती ठोंक और हाथ उठा उठाकर लोगोंको विश्वास दिया ? आप ही सब मरते, चाहे जहन्नुममें पड़ते'।

तथ्यनिरूपण

नाटक रचनामें शैथिल्य-दोष कभी न होना चाहिये, नायक नायिका द्वारा किसी कार्य विशेषको अवतारणा करके अपरिसमाप्त रखना अथवा अन्य व्यापारकी अवतारणा करके उसका मूलच्छेद करना नाटक रचना-उद्देश्य नहीं है। जिस नाटककी उत्तरोत्तर कार्यप्रणाली सन्दर्शन करके दर्शक लोग पूर्व-पूर्व कार्य विस्मृत होते जाते हैं वह नाटक कभी प्रशंसाभाजन नहीं हो सकता।

पं० प्रतापनारायण मिश्र

ये कानपुर जिलाके रहनेवाले थे। इनका जन्म सं० १९१३ में हुआ था। आप स्वभावके सरल और विनोदप्रिय थे। जातीयता राष्ट्रीयता और धार्मिकताका भाव सदा इनके हृदयमें रहता था। इनकी भाषा सदा व्यंग्यपूर्ण होती थी। लोकोक्तिका भी समावेश बड़े अच्छे ढंगसे पाया जाता है। हिन्दी प्रचारके लिये इन्होंने जो व्यंग्यात्मक शैली ग्रहण की वह वास्तवमें प्रशंसनीय है। इनमें हास्य और विनोदकी काफी पुट है। आपकी लिखी हुई कई पुस्तकें हैं, आपने बंगलासे भी कई पुस्तकें अनुवाद कीं। 'रसखान शतक, और 'प्रतापसंग्रह' नामके दो संग्रह ग्रन्थ भी आपने तैयार किये। सं० १९४० में आपने कानपुरसे 'ब्राह्मण' नामक पत्र भी प्रकाशित किया। सं० १९५१ में ३८ वर्षकी अवस्थामें आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी सेवाओंके लिये हिन्दी जगत् सदा आपका आभारी रहेगा।

उदाहरणके लिये कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं :—

"घरकी मेहरिया कहा नहीं मानती, चले हैं दुनिया भरको उपदेश देने। घरमें एक गाय नहीं बांधी जाती गोरक्षिणी सभा-स्थापित करेंगे। तनपर एक सूत देशी कपड़ेका नहीं है, बने हैं देश हितैषी। साढ़े तीन हाथका अपना शरीर है उसकी उन्नति नहीं कर सकते, देशोन्नतिपर मरे जाते हैं। कहांतक कहिये हमारे नौ सिखिया भाइयोंको "मालीखुलिया"का आजार हो गया, करते धरते कुछ भी नहीं हैं बक बक बांधे हैं"।

पण्डित बदरीनारायण चौधरी (प्रेमघन)

आप मिर्जापुरके रहनेवाले थे। इनका जन्म सं० १९१२ में हुआ। हिन्दी गद्य लेखकोंमें आपका एक खास स्थान है। इनकी लिखी हुई कई पुस्तकें हैं। आपने बहुत समयतक 'आनन्दकादम्बिनी' और 'नागरी नीरद' नामके पत्रोंका प्रकाशन किया। कई नाटक भी लिखे। आपके 'भारत सौभाग्य' और 'वारांगना रहस्य' नामक नाटक देखने योग्य हैं। हिन्दी गद्यमें जिस प्रकार भारतेन्दु बाबूकी 'भावावेश' और 'तथ्यनिरूपण'की दो शैलियां हैं, पण्डित प्रतापनारायण मिश्रकी 'व्यंगयात्मक' शैली है उसी प्रकार चौधरी साहबकी कलापूर्ण और वचित्र्य व्यंजित शैली है। इनके लेख काट छांटकर सुडौल बनाकर तब प्रकाशित होते थे। अनुप्रास-का भी काफी ध्यान इन्हें रहता था। कहनेका मतलब यह है कि आप भाषाके कारीगर थे।

हिन्दी साहित्यमें समालोचनाके प्रथम लेखक आप ही हैं। समालोचनाका सूत्रपात आपही द्वारा हुआ। पुस्तकोंका गुण-दोष देखकर आप अच्छा विवेचन करते थे। सर्वप्रथम आपने बाबू गदाधरसिंह द्वारा रचित 'बंगविजेता' और लाला श्रीनिवासदास रचित 'संयोगितास्वयम्वर' की समालोचना की।

इनकी शैलीका उदाहरण नीचे दिया जाता है – "सुन्दर हरित पत्रावलियोंसे भरित तसगनोंकी सुहावनी लताएं लिपट-लिपट मानों मुग्ध मयंक मुखियोंको अपने प्रियतमोंके अनुरागालिंगनकी विधि बतलातीं।"

"ईश्वरका भी क्या खेल है कि कभी तो मनुष्यपर दुःखकी रेलपेल और कभी उसपर सुखकी कुलेल है।"

पण्डित बालकृष्ण भट्ट

इनका जन्म सं० १९०१ में प्रयागमें हुआ था। इन्होंने सं० १९३४ में 'हिन्दी प्रदीप' नामक पत्र प्रयागसे निकाला। भट्टजी एक शैली-विशेषके प्रवर्तक हैं। समाचार-पत्रके प्रकाशकोंमें आपका नाम सदा अमर रहेगा। साहित्यिक, सामाजिक तथा राजनैतिक सभी प्रकारके लेख आप प्रौढ़, परिष्कृत तथा साहित्यिक हिन्दीमें लिखते थे। मिश्रजीकी तरह आप भी कहावतोंका प्रयोग करते थे। पूर्वीकी पुट इनमें भी थोड़ी बहुत दीख पड़ती है। आप अंग्रेजी तथा फारसी शब्दोंके प्रयोगमें भी हिचकते थे। आप मौजी जीव थे और इसी कारण आपकी

भाषामें 'चुलबुलाहट' है । मुहावरोंका प्रयोग भी आप उत्तम ढङ्गसे करते थे ।

इतना होते हुए भी भट्टजीकी भाषाम घरेलूपन नहीं आने पाया है। संस्कृतके विद्वान होनेके कारण ये भाषाको रोचक बनाते हुए भी उसमें एक प्रकारका ऐसा भाव भरते थे जिससे गाम्भीर्य और वजन टपकता था। अपने भावोंको आप इस प्रकारसे कहते थे कि पाठक और लेखकमें कुछ अन्तर ही न रह जाता । इनकी तुलना अंग्रेजीके अच्छे निबन्ध लेखकोंसे की जा सकती है। आचार्य द्विवेदीकी भांति इनका भी नाम हिन्दी गद्य लेखकोंमें सदा अमर रहेगा। इनके ये लेख —'इसे इलाहाबाद कहें या खाका-बाद' आंसू, बातचीत, ईश्वर क्या ही ठठोल है, बहुत प्रसिद्ध हैं । 'सौ अजान और एक सुजान' 'नूतन ब्रह्मचारी' आदि आपके मौलिक उपन्यास हैं ।

इनके गद्यका नमूना नीचे दिया जाता है—

'बातचीत'

बातचीतमें वक्ताको नाज नखरा ज़ाहिर करनेका मौका नहीं दिया जाता कि वह अब एक बड़े अन्दाजसे गिन-गिनकर पांव रखता हुआ पुलपिटपर जा खड़ा हुआ और पुण्याह वाचन या नान्दीपाठककी भांति घड़ियोंतक साहबान मजलिस, चेयर-मैन, लेडीज ऐन्ड जेन्टिलमैनकी बहुत सी स्तुति कर तब किसी तरह वक्तृताका आरम्भ करे ।

आंसू

कोई शूर वीर,. जिसको रामचरित सुन जोश आ जाता है और जो लड़ाईमें गोली तथा बाणकी वर्षाको फूलकी वर्षा मानता है, वीरताकी उमंगमें भरा हुआ युद्ध यात्राके लिये प्रस्थान करनेको तैयार है। विदाईके समय विलाप करते हुए अपने कुनबावालोंके आंसूके एक एक बून्दकी क्या कीमत है। यह वही जान सकता है।

भारतेन्दुकालकी औपन्यासिक रचना

भारतेन्दु-मण्डलीके गद्य लेखककोंके विषयमें थोड़ा-सा परिचय दिया जा चुका है। इसका यह अर्थ नहीं कि वे ही कुल थे। और लेखककोंने भी हिन्दीके प्रचाराथ काम किये हैं किन्तु उनका प्रसंग यहां नहीं दिया जा रहा है।

समाचार पत्र तथा पुस्तक रचना (तरह तरहके विषयोंपर) के बारेमें संक्षित वर्णन दिया जा चुका है, अब 'उपन्यास' के बारेमें कुछ दिग्दर्शन कराया जायेगा।

सर्व प्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षागुरु' लाला श्रीनिवास दास द्वारा लिखा गया। इसके बाद बाबू राधाकृष्णदास द्वारा 'निस्सहाय हिन्दू' और पण्डित बालकृष्ण भट्ट द्वारा 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान और एक सुजान' नामक उपन्यास लिखे गये। बंगलाके सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासोंके अनुवाद खूब हुए। पं० प्रतापनारायण मिश्रने 'राजसिंह' इन्दिरा'

और 'राधारानी' एवं राधाचरण गोस्वामीने 'विरजा' 'मृगमयी' आदि अनूदित उपन्यास लिखे। भारतेन्दुके फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्णदासने 'स्वर्णलता' और 'मरता क्या न करता' नामकी अनूदित पुस्तकें लिखीं। फिर तो अनूदित उपन्यासोंकी भर-मार हो गई। सं० १९४५ के लगभग पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधने 'वेनिसकाबांका' नामका अनूदित उपन्यास लिखा। यह उत्तम रचनाओंमें है।

भारतेन्दुकालकी नाटक-रचना

भारतेन्दु बाबूने नाटक नामकी पुस्तकमें लिखा है कि उनके पूर्व दो नाटकोंकी रचना हुई थी। पहला विश्वनाथसिंह कृत 'आनन्दरघुनन्दन नाटक' और दूसरा बाबू गोपालचन्द (भारतेन्दुजीके पिता) द्वारा रचित 'नहुष नाटक'। इनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

भारतेन्दु बाबूने स्वयं मौलिक तथा अनूदित नाटकोंको लिख कर नाटक-रचनाका मार्ग सुगम कर दिया। इनके मौलिक नाटक ये हैं

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चन्द्रावली, विषस्य विषमौषधम्, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, अन्धेर नगरी, प्रेम जोगिनी और सतीप्रताप (अधूरा)।

अनूदित – विद्यासुन्दर, पाखण्ड विडंबन, धनंजय विजय, कर्पूरमंजरी, मुद्राराक्षस, सत्यहरिश्चन्द्र। 'सत्यहरिश्चन्द्र' के

बारेमें लोगोंका मतभेद है। कोई-कोई इसे मौलिक कहते हैं।

भारतेन्दु द्वारा प्रदर्शित मार्गको अनुकरण कर पं० बदरी-नारायण चौधरी, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पं० अम्बिकादत्त-व्यास, बाबू राधाकृष्णदास, पं० तोताराम तथा बालकृष्ण वर्मा-ने मौलिक तथा अनूदित नाटक लिखे। पं० प्रतापनारायण मिश्रके कलिकौतुक रूपक, कलि प्रभाव, हठी हमीर आदि, चौधरी साहबके भारत सौभाग्य, वारांगना रहस्य, वृद्धविलाप आदि, श्रीनिवासके संयोगिता स्वयंबर आदि, पं० अम्बिकादत्त व्यासके भारत सौभाग्य आदि और बाबू राधाकृष्णके दुःखिनीबाला आदि प्रसिद्ध हैं। इसके पीछे बाबू रामकृष्ण वर्माने बंगलाके कई नाटकोंका अनुवाद किया, किन्तु यह नाटक रचना कुछ कालके लिये आगे चलकर बंद हो गई, क्योंकि नाटक दृश्य काव्य है इसके खेलनेके लिये साधनोंकी बड़ी आवश्यकता है। पारसी कम्पनियां हिन्दीकी अपेक्षा उर्दू नाटकोंको अधिक खेलती थीं। हिन्दी नाटकोंको प्रोत्साहन नहीं मिला, इसलिये नाटक रचना बन्द हो गई।

निबन्ध-रचना

निबन्ध साहित्यका प्रधान अंग है। इससे किसी गद्य-लेखककी बुद्धिका पूरा पता चलता है। हिन्दीमें निबन्धोंकी भरमार भारतेन्दुके जमानेमें थी। भारतेन्दु बाबूकी मंडलीके सभी लोग उच्च कोटिके लेखक थे। वे लोग हरिश्चन्द्रचन्द्रिका,

ब्राह्मण, आनन्द कादम्बिनी, हिन्दी प्रदीप आदिमें हमेशा निबन्ध लिखा करते थे। इसके पश्चात् निबन्ध प्रणाली बन्द-सी हो गई। फिर भी कुछ लोगोंने निबन्ध लिखना बन्द नहीं किया। उनका वर्णन दूसरे भागमें किया जायगा।

नागरी-प्रचार

पहिले बताया जा चुका है कि नागरी प्रचारके लिये राजा शिवप्रसादजीको कितना परिश्रम करना पड़ा। इनके पश्चात् तो भारतेन्दु बाबू जी-जानसे नागरी प्रचारके लिये भिड़ गये। जहां कहीं जाते थे, व्याख्यानों और लेखों द्वारा नागरी प्रचार करते थे। नागरी प्रचारके लिये आपने कई पैम्फलेट भी लिखे। उनका मूल सिद्धांत यह था—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नतिको मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञानके, मिटत न हियको सूल॥

भारतेन्दु बाबूने सरकारी दफ्तरोंमें नागरी प्रचारके लिये प्रयत्न किया, किन्तु सफलीभूत न हुए। पं० प्रतापनारायण मिश्र हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तानका सुर सदा अलापते रहे। पं० तोतारामने अलीगढ़में भाषा सम्वर्द्धिनी सभा खोली। भारतेन्दुके पश्चात् मेरठके प्रसिद्ध सारस्वत ब्राह्मण पण्डित गौरीदत्तजीने नागरी प्रचारका भार अपने सिरपर लिया और अपनी सारी संपदा नागरी प्रचारके लिये दे दी। इनके नामका "गौरी-नागरी-कोष" अब भी है।

नागरी प्रचारका सबसे बड़ा श्रेय 'नागरीप्रचारिणी सभा' (काशी) को है। यह सं० १९५० में स्थापित हुई थी। बाबू श्यामसुन्दरदास, पं० रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंहके उद्योगसे इनकी स्थापना हुई थी।

सं० १९५० में एक प्रभावशाली डेपुटेशन जिसमें महाराज अयोध्या, महाराज मांडा, महाराज आवागढ़, डा० सुन्दरलाल और पं० मदनमोहन मालवीय थे, लाट साहबसे मिला। इन लोगोंके अथक परिश्रमसे सं० १९५७ में नागरीको कचहरियोंमें स्थान देनेके लिये घोषणा हुई।

सं० १९५६ में नागरी-प्रचारिणी-सभाको गवर्नमेण्टसे ४००) रु० वार्षिक सहायता मिलने लगी। इस सहायतासे हिन्दी-भाषा तथा साहित्यका खूब प्रचार हुआ और हो रहा है। यों तो कई पुस्तकें इस सभा द्वारा प्रकाशित हुईं किन्तु 'हिन्दी शब्दसागर' नामका बृहद् कोष तो अपने ढंगका अनूठा है। नागरी प्रचारिणी सभाको प्रसिद्ध करनेके लिये यह कोष अकेला ही पर्याप्त है। इस सभासे 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' भी निकलती है जिसमें साहित्यिक, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक लेख रहते हैं।

संवत् १९५६ में प्रयागसे 'सरस्वती' नामकी मासिक पत्रिका निकलने लगी। इसके द्वारा नागरीका खूब प्रचार हुआ। यह पत्रिका शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोलीका सदासे समर्थन करती रही। आगे चलकर आचार्य द्विवेदीके सम्पादन कालमें तो इसने अभूतपूर्व उन्नति की। भाषाका उच्चतम तथा व्याकरणयुक्त आदर्श इसी पत्रिकाने रखा।

आराकी नागरी प्रचारिणी संस्थाने भी भाषा और साहित्यके उत्थानके लिये काफी काम किया। अब भी इसके द्वारा हिन्दीकी खूब सेवा हो रही है।

गद्य-साहित्यकी तीसरी अवस्था

(संवत् १९५७ से १९९०)

संवत् १९५७ के पूर्व भाषा और साहित्यके उत्थानके लिये अनेकों सभायें स्थापित हो चुकी थीं। समाचार पत्रोंका भी काफी प्रचार हो चुका था। विद्वान लेखकोंने साहित्यके अंग उपांगको पूरा किया। अब कमी थी तो केवल व्याकरण की। यह कमी इस कालमें पूरी की गई। यही इस अवस्थाकी विशेषता है। इस कालमें आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीने अपने अदम्य उत्साह तथा अपने पांडित्य और विद्वत्तासे भाषाको उस रूपमें बदला जिसमें वह कभी नहीं थी। पण्डित गोविन्द नारायण मिश्रने 'विभक्ति-विचार' नामकी पुस्तक लिखकर विभक्तियोंके प्रयोगकी तरफ लोगोंका ध्यान आकर्षित किया। इनका कहना था कि विभक्तियां मिलाकर लिखी जानी चाहिये।

आचार्य द्विवेदीजी भाषाकी सफाई और व्याकरणकी शुद्धतापर विशेष ध्यान रखते थे। उन्हीके कारण हिन्दीका यह परिष्कृत रूप आज हम देख रहे हैं। गद्य तथा पद्य दोनोंमें व्याकरण और

भाषाका ध्यान रखते थे। आजके जितने प्रसिद्ध कवि या लेखक हैं उनमेंसे अधिकांश द्विवेदीजीकी कृपाके कारण बढ़े हैं। जिनका उनसे सीधा सम्बन्ध नहीं था वे भी किसी-न-किसी रूपमें उनके ऋणी हैं। वास्तवमें 'सरस्वती' का सम्पादन करके द्विवेदीजीने 'सरस्वती' को सरस्वती बना दिया और अपना यथा नाम (महावीर) तथा गुण भी दिखा दिया।

अब साहित्यके प्रत्येक अंगको लेकर उसका वर्णन किया जायगा और लेखकोंका थोड़ा साहित्यिक परिचय भी दिया जायगा जो साहित्यकी सेवा कर रहे हैं। इन लोगोंका पूरा परिचय तो 'पद्य-धारा' में दिया जायगा।

उपन्यास

भारतेन्दु कालमें मौलिक तथा अनूदित उपन्यास लिखे गये थे। इनमें विशेषकर अनूदित ही थे। बाबू रामकृष्ण वर्मा और बा० गदाधर सिंह आदिने बंगला उपन्यासोंका अनुवाद किया। इस कालमें भी अनूदित उपन्यासोंकी भरमार थी किन्तु अन्तिम समयमें हम देखते हैं कि अच्छे अच्छे सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये।

इस कालमें बाबू देवकीनन्दन खत्रीका नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। इन्होंने तिलस्मी उपन्यास लिखे। जिनमें 'चन्द्रकान्ता' और 'भूतनाथ' हिन्दी-जगत्में अति प्रसिद्ध हैं। साहित्यिक दृष्टिसे चाहे इनका महत्व कम हो किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यासोंमें इनसे अधिक जनतामें

किसी भी उपन्यासका प्रचार नहीं है। इनकी भाषा शैली तथा लेखन शैली ऐसी सीधी सादी है और घटनाएं इस तरह चमत्कार पूर्ण हैं कि शायद ही कोई व्यक्ति एक बार पुस्तक शुरू करे और फिर बिना समाप्त किये कोई दूसरी पुस्तक पढ़े या दूसरा काम ही करे। बहुधा लोग खाना पीना भी भूल जाते हैं।

गोपालराम गहमरीने बंगलासे कई उपन्यासोंका अनुवाद किया है। कुछ तो भारतेन्दु कालमें लिखे गये थे और कुछ १६५७ में और कुछ इसके पश्चात लिखे गये। चतुरचंचला, भानमती नये बाबू सं० १६५७ के पूर्वके हैं और बड़ा भाई, देवरानी जेठानी, तीन पतोहू और सास पतोहू १६५७ में और इसके बाद लिखे गये। इनकी भाषामें वाग्वैचित्र्य, वक्रता और व्यंग है। कुछ पूर्वीपन भी है।

पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा और पं० रूपनारायण पाण्डेयने भी बंगला उपन्यासोंका काफी अनुवाद किया। बंकिमचन्द्र, शरतचन्द्र तथा रवीन्द्रनाथके उपन्यासोंका अनुवाद करके इन लोगोंने हिन्दीकी काफी सेवा की।

पण्डित लज्जाराम मेहताने हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृति तथा पारिवारिक व्यवस्थाकी उपयुक्तता दिखलाते हुए कई उपन्यास लिखे। हिन्दू-गृहस्थ, आदर्श दम्पति और बिगड़ेका सुधार विशेष उल्लेखनीय है। बाबू ब्रजनन्दन सहाय बी० ए० का 'सौन्दर्योपासक' और 'राधाकान्त' भावप्रधान साहित्यिक उपन्यास हैं।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने दो उपन्यास ठेठ हिन्दीमें लिखे। 'ठेठ हिन्दीका ठाट' और 'अधखिला फूल' (१६६४)। दोनोंमें सरल भाषाका प्रयोग किया गया है। 'वेनिसका बांका' की यदि इनसे बराबरी की जाय तो साफ पता चल जाता है कि उपाध्यायजीका भाषापर कितना अधिकार है। एक ओर 'बांका' की संस्कृत गर्भित भाषा और दूसरी ओर बोल-चालकी साधारण भाषा।

उपन्यास लेखकोंमें आज दिन स्वर्गीय श्रीप्रेमचन्द बी० ए० तथा विश्वम्भरनाथ शर्माका नाम हिन्दी जगतमें अति प्रसिद्ध है। श्रीप्रेमचन्दजी उपन्यास-सम्राट माने जाते हैं। इनके सेवासदन प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प तथा ग़बन उच्च कोटिके उपन्यास हैं। सेवासदन तो अद्वितीय है। इनकी भाषामें उर्दूपनकी भी बू है। पहिले आप उर्दूहीके लेखक थे। ग्राम-चित्रण, समाज-चित्रण मानव हृदयकी अन्तर्वृत्तिका चित्रण आप बड़े उत्तम ढंगसे करते हैं। शर्म्माजीकी 'भिखारिणी' और 'मां, उच्च कोटिके उपन्यास हैं। इनकी भाषा शुद्ध साहित्यिक है। समाजका भी चित्रण आप अच्छे ढंगसे करते हैं।

गल्प और कहानियां

कुछ अंशोंमें कहा जा सकता है कि कहानीका प्रादुर्भाव गद्य के साथ ही साथ हुआ था। इंशाका गद्य कहानीसे ही प्रारम्भ किया गया था। इससे कहा जा सकता है कि कहानीकी सर्व

प्रथम रचना इंशाने की थी। इसके बाद लल्लूजी लालकी 'प्रेम-बतीसी' और सदलमिश्रका 'नासिकेतोपाख्यान' कहानीके रूपमें प्राप्त है। 'रानी केतकीको कहानी' वैचित्र्यपूर्ण है और 'प्रेमबतीसी' तथा 'नासिकेतोपाख्यान' धार्मिक कहानियां हैं। तदनन्तर भारतेन्दु बाबूने 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' और पं० बालकृष्ण भट्टने 'सौ अजान और एक सुजान' नामकी पुस्तक लिखी। इन कहानियोंमें भी कोई साहित्यिक कला नहीं पाई जाती। ये पुस्तकें केवल एक 'दिलचस्प किस्सा' के उद्देश्यसे लिखी गई थीं। भारतेन्दुके अस्त होनेपर प्रेसोंसे कहानियां प्रकाशित होने लगीं। नवलकिशोर प्रेस (लखनऊ) से 'तोतामैना' और 'सारंगा सदबहार' आदि छपीं।

वास्तवमें कहानियोंका रंग श्री प्रेमचन्दजी द्वारा बदला। इनकी कहानियां ऐसो हैं जिन्हें हम कहानी-कला सम्पन्न पाते हैं। इनकी कहानियां संसारके किसी भी सम्मुन्नत साहित्यसे बराबरी कर सकती हैं। ग्राम-चित्रण, समाज-चित्रण आदिका जो सच्चा स्वरूप ये चित्रित करते हैं, वह फ्रेञ्च, अङ्गरेजी और रूसी साहित्य होमें पाया जा सकता है। इनकी कहानियोंमें घटनाओंका क्रम-विकास और पात्रकी मनोवृत्तिका झुकाव स्थान-स्थान पर इस प्रकार झलकता है कि पाठककी जिज्ञासा क्षण प्रति क्षण बढ़ती जाती है। भविष्यमें क्या होगा, यह जाननेकी प्रबल इच्छा पाठकके हृदयमें रहती है। कहानीका यह सर्वश्रेष्ठ गुण है। जो कहानी लेखक पाठकके हृदयमें जिज्ञासा और तद्‌ फल-स्वरूप बेचैनी नहीं पैदा करता वह कहानी-कला-

विशारद नहीं कहा जा सकता। अङ्गरेजीके प्रसिद्ध कहानी लेखक 'स्टीवेन्शन' की कहानियां आप पढ़ते जाइये परन्तु थोड़ी-सी भी उकताहट या थकावट न मालूम होगी। टालस्टाय और मोपासाकी कहानियां भी इसी कोटिकी हैं। प्रेमचन्दजीकी कहानियां साहित्यकी अमरनिधि हैं। प्रेमचन्दजीपर हिन्दी जगतको गर्व है और होना भी चाहिये।

प्रेमचन्दजी पहिले उर्दू के लेखक थे। बादमें आचार्य द्विवेदीजी के जादूने इन्हें हिन्दीकी ओर खींचा। इनकी भाषा उर्दू मिश्रित होती है और सम्भवतः इसी कारणसे इनमें चलतापन है। इनकी भाषा चलती फिरती बोलचालकी है। आपकी कहानियोंके कई संग्रह हुए हैं। सप्तसरोज, प्रेमपचीसी, प्रेमपूर्णिमा, प्रेमद्वादशी, नवनिधि आदि इनकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। पंचपरमेश्वर, बड़े घरकी बेटी, शतरंजके खिलाड़ी आदि आपकी प्रसिद्ध कहानियां हैं।

प्रेमचन्दजीके बाद यदि किसीका नाम लिया जा सकता है तो वह हैं पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'। कौशिकजी एक कहानी-कलाविद् हैं। इनकी कहानियां प्रायः सामाजिक होती हैं। समाजका जो सुन्दर और सच्चा चित्र ये खींचते हैं वैसा शायद ही कोई खींच सकता है। कहीं-कहीं आप प्रेमचंदजीसे भी आगे बढ़े देख पड़ते हैं। गाँवका चित्र तो अनोखे ढंगसे वर्णन करते हैं। इनकी कहानियोंमें भी कार्य-क्रम-विकाश बड़े अच्छे ढंगसे होता है। भाषा प्रेमचंदजीकी तरह सीधी सादी और मुहाविरेदार होती है।

'सुदर्शन', 'प्रसाद' चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' स्वर्गीय, पं० चतुरसेन शास्त्रीके नाम कहानी लेखकोंमें विशेष उल्लेखनीय हैं। ये लोग सामाजिक, दार्शनिक आदि तरह तरहकी कहानियां लिखते हैं। आजकल श्रीसुभद्राकुमारी चौहानका भी नाम कहानी लेखकोंमें प्रसिद्ध है। अभी एक वर्ष हुआ इनकी 'बिखरे मोती' नामकी पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसमें कई कहानियोंका संग्रह है। इसमें विशेष कर सामाजिक कहानियां हैं।

इन मौलिक कहानियोंके अलावा काफी अनुवाद भी हुए हैं। अंगरेजी, बंगला, फ्रेंच आदि कहानियोंके भी अनुवाद हुए हैं। टालस्टायकी भी कहानियोंके सुन्दर अनुवाद हुए हैं।

नाटक

संवत् १९५७ के पूर्व अनुवाद करनेकी परिपाटी बहुत दिनों-तक जारी रही। संवत् १९४६ में गोपीनाथजी एम० ए०ने शेक्स-पियरके "रोमियो जूलियट" तथा "ऐज़ यू लाइक इट" का अनु-वाद किया था। स्वयं बाबू हरिश्चन्द्रने मुद्राराक्षसका अनुवाद किया था।

इस समय लाला सीताराम बी० ए० का नाम संस्कृत नाटकोंके अनुवादकोंमें अग्रगण्य है। इन्होंने मेघदूत, मालती माधव, उत्तर रामचरित तथा मालविकाग्निमित्र आदिका उत्तम तथा साहित्यिक ढंगसे अनुवाद किया है। पं० सत्यनारायण कविरत्नने भी उत्तर रामचरित तथा मालती-माधवका अनुवाद

किया। सत्यनारायणजीके अनुवादोंमें मूलभाव रखनेकी पूरी कोशिश की गई है। ब्रज भाषामें पद्य अत्यन्त मधुर हैं।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का, 'चन्द्रकला भानुकुमार' मौलिक नाटक है। ये ब्रजभाषाके सिद्धहस्त लेखक थे। यह नाटक शुद्ध साहित्यिक है। पं० रूपनारायण पाण्डेयने भी बंगला नाटकोंके अनुवाद किये हैं।

मौलिक नाटक-लेखकके रूपमें श्रीजयशंकर 'प्रसाद' आते हैं। इनके नाटक शुद्ध और उच्चकोटिके साहित्यिक हैं। इनकी भाषा संस्कृत गर्भित होती है और कहीं कहीं जटिल भी हो गई है। इनके जनमेजयका नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, अजात शत्रु अति प्रसिद्ध नाटक हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये खेलनेमें अभी ठीक नहीं जंचते। इन्होंने भारतकी प्राचीन सभ्यताका अच्छा दिग्दर्शन कराया है। ये ऐतिहासिक नाटक हैं। इनके बरमाला और दुर्गावती रङ्गशालाके उपयुक्त हैं।

निबन्ध

आचार्य पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी

बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके जमानेमें पत्र-पत्रिकाओंमें निबंध निकलते रहे। इस समयमें अर्थात् भारतेन्दु मण्डलीके अन्तमें निबन्धपर दो पुस्तकें मिलती हैं। एक तो पं० महावीरप्रसाद कृत 'बेकन-विचार रत्नावली' और दूसरी पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री कृत 'निबन्ध मालादर्श'। पहली अंग्रेजीका और दूसरी मराठी

निबंधोंका अनुवाद है। द्विवेदीजीने सं० १९६० में सरस्वतीके संपादनका भार लिया। तबसे आप सदा परिश्रमके साथ लेख लिखते रहे। 'कवि और कविता' इनका प्रसिद्ध लेख है। द्विवेदीजी प्रसिद्ध और सिद्धहस्त लेखक थे। इनके निबंध उच्च कोटिके साहित्यिक हैं।

द्विवेदीजी वास्तवमें गद्य लेखकोंमें सर्वश्रेष्ठ थे। 'वेकन-विचार रत्नावली' से यह ध्वनि निकलती है कि आपका नाम बेकनकी तरह सदा अमर रहेगा। आपके निबंधों और समालोचनाओंके देखनेसे पता चलता है कि आपमें कितनी प्रखर प्रतिभा, कितनी सूक्ष्म और ऊंची कल्पना और कितना विकट पांडित्य था। आपके गद्यके प्रत्येक अक्षर, शब्द और भावमें द्विवेदी छाप लगी रहती है। एक ओर तो आप किसीको ठिठोली और चुटकी लेते देख पड़ते हैं तो दूसरी ओर कोई गाम्भीर्य और पाण्डित्य पूर्ण वाक्योंकी छटा बिखराते देख पड़ते हैं। एक ओर इनके लेखों द्वारा यदि कोई कायर और निरुत्साही बनता है तो दूसरी ओर प्रताप और नेपोलियन सरीखे होनेकी भी रचना पाता है। कहने-का अभिप्राय यह कि द्विवेदीजीमें आप कई प्रकारकी शैलियां पायेंगे। मुख्य रूपसे आपकी तीन शैलियां प्रचलित हैं और उन्हींके लिये आप विख्यात भी हैं।

व्यंग्यात्मक शैली

जब आप किसी समाज या संस्था या जन सामूहिक किसी कार्यकी टीका टिप्पणी करते थे तो इस शैलीको प्रयोगमें लाते

थे। इनकी भाषा हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत मिश्रित रहती थी। इसके द्वारा आप मीठी चुटकी खूब लेते थे किन्तु उसमें गंवारूपन या 'अक्खड़बाजी' नहीं रहती थी। सभ्यता पूर्ण हास्योत्पादक व्यंग्य रहता था। 'म्युनिसिपैलिटियोंके कारनामे' नामका लेख इसका सजीव उदाहरण है। कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं—

इस म्युनिसिपैल्टिीके चेयरमैन (जिसे अब कुछ लोग कुर्सी-मैन भी कहने लगे हैं) श्रीमान् बूचाशाह हैं। बाप-दादोंकी कमाई का लाखों रुपया आपके घर भरा है। पढ़े-लिखे आप रामका नाम ही हैं।

म्युनिसिपैलिटीके मदर्सोंकी देख-भाल एक मेम्बर साहबके सिपुर्द है। आपका शुभ नाम है ठाकुर वंशपालसिंह! एक बार एक बैठे ठालेने पता लगाया तो मालूम हुआ कि कुल ३० मुदर्रिसोंमेंसे २९ मुदर्रिस ठाकुर साहबके रिश्तेदार हैं—कुछ मातृपक्षके, कुछ पितृपक्षके।

द्वितीय शैली

निबंध रचनामें आप इस शैलीको प्रयोगमें लाते थे। इसमें व्यंग्य नहीं है। तत्सम शब्दोंका प्रायः बाहुल्य है। भाषा शुद्ध और परिमार्जित है। इसमें इनके पांडित्यका अच्छा प्रदर्शन रहता है। भाषा और भावमें सामंजस्य रहता है। इन निबंधोंकी भाषा ओजस्वी और प्रभावोत्पादक है। "साहित्य महत्ता"

वाले लेखमें ये सब बातें पूरी तौरसे पाई जाती हैं। लेखन शैली देखिये—जाति विशेषके उत्कर्षापकर्ष, उसके उच्च नीच भावोंका, उसके धार्मिक विचारों और सामाजिक सङ्गठनका, उसके ऐतिहासिक घटनाचक्रों और राजनैतिक स्थितियोंका प्रतिबिम्ब देखने को यदि कहीं मिल सकता है तो उसके ग्रन्थ 'साहित्य" ही में मिल सकता है।

तृतीय शैली

इस शैलीका प्रयोग समालोचनाके समय करते थे। इसकी भाषा मिश्रित होती थी। इसमें मजाक या व्यंग्य नहीं रहता था। इसमें खूब 'वजन' रहता था। उत्तम लेखक होनेके कारण आप खूब सोच विचार कर विवेचना पूर्ण वाक्य लिखते थे।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त

आचार्य द्विवेदीजीके साथ-साथ गुप्तजीका नाम सदा हिन्दी जगत्में याद किया जायगा। गुप्तजी एक प्रतिभाशील चतुर सम्पादक और उच्च कोटिके लेखक थे। एक ओर प्रयागमें द्विवेदीजी गरजते थे तो दूसरी ओर कलकत्तामें गुप्तजी अपनी मधुर मुसकानसे सिंहकी शक्ति हीन करते थे। गुप्तजीकी एक निराली शैली थी। इनकी भाषा उर्दू मिश्रित और रसदार होती थी। व्यंग्यकी भी मात्रा आपमें खूब थी। इनके लेखोंसे पता चलता है कि व्यंग्य इनकी ईश्वर-प्रदत्त निजी सम्पति थी। व्यंग्यके साथ-साथ मनोरंजनकी सामग्री भी खूब रहती थी।

व्यंग्यके बहानेसे आप जिसे चाहते एक फटकार सुना देते, राजनीतिक और सामाजिक विषयोंपर आप अनोखे ढंगका चुभता हुआ लेख लिखते थे। इनका 'शिवशम्भुकाचिट्ठा' नामका लेख हिन्दी जागत्में अति प्रसिद्ध है। उसीमेंसे एक अवतरण दिया जाता है।

'सचमुच बड़ी कठिन समस्या है। कृष्ण हैं उद्धव हैं पर ब्रजवासी उनके निकट भी नहीं फटकने पाते। सूर्य हैं धूप नहीं। चन्द्र हैं चांदनी नहीं। माईलार्ड नगर हीमें हैं पर शिवशम्भु उनके द्वारा तक नहीं फटक सकता, उनके घर चलकर होली खेलना तो दूसरा ही विचार है। माई लार्डके घर तक बातकी हवा नहीं पहुंच सकती। जहांगीरकी भांति उसने अपने शयनागार तक ऐसा कोई घण्टा नहीं लगाया जिसकी जञ्जीर बाहरसे हिलाकर प्रजा अपनी फरयाद सुना सके। उसका दर्शन दुर्लभ है।'

निबंध लेखकोंमें बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, पं० चन्दधर शर्मा गुलेरी और पं० रामचन्द्र शुक्लका नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन तीनों महारथियोंने अपने अदम्य उत्साह, अनवरत परिश्रम और महान त्यागसे साहित्यकी बड़ी सेवा की है। यद्यपि आज दिन गुलेरीजी इस संसारमें नहीं हैं तो भी उनकी अमर कीर्ति सदा हरीभरी रहेगी।

बाबू साहबकी हिन्दी सरल और भाव पूर्ण होती है। इनके लेखोंमें संस्कृतगर्भित शब्द शायद ही मिल सकें। विदेशी भाषा का भी समावेश आपकी कृतियोंमें नहीं पाया जाता। आपकी

भरसक यही कोशिश रहती है कि हिन्दी सरल और बोधगम्य हो। आपकी तथा शुक्लजीकी भाषामें जमीन और आसमान का अन्तर है। गुलेरीजी हिन्दीके चतुर लेखक थे। आपके लेखोंमें हास्यरसकी एक मनोहारिणी पुट रहती थी। हास्यरसके होते हुए भी आपके लेख पांडित्यपूर्ण और गम्भीर होते थे। पं० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी गद्यके प्रकाशमान सूर्य हैं। हम उनकी तुलना किसीसे नहीं कर सकते। इनकी भाषा संस्कृत-गर्भित किन्तु साथ ही साथ भावपूर्ण होती है। शब्दोंका वाग्जाल नहीं रहता, प्रत्येक शब्द तुला हुआ और वजनदार होता है। आज दिन गद्य लेखकोंमें इनका सर्वोच्च स्थान है। 'समालोचना' के वर्णनमें इनपर कुछ और प्रकाश डाला जायगा।

समालोचना

समालोचनाका वास्तविक अर्थ है किसीका गुण दोष देखना। हिन्दी साहित्यमें यदि आज दिन देखा जाय तो इसकी बहुत ही कमी है। कुछ लोग तो गुण ही देखेंगे और कुछ लोग दोष ही दोष। पण्डितवर भी व्यक्तिगत प्रेम-बैरके कारण खिंच जाते हैं और समालोचकके स्थानसे गिर जाते हैं। आज कल चार प्रकारकी समालोचनाएं प्रसिद्ध हैं।

१-निर्णयात्मक—किसी कवि या उसके काव्यकी समीक्षा करके गुण-दोष निर्धारित करना। इसमें कवि या काव्य-की स्तुति अथवा निन्दा होती है।

२-व्याख्यात्मक—इसमें किसी काव्यकी सारी बातों-को सामने रखकर उसका तरह तरहसे स्पष्टीकरण करना। इसमें स्तुति अथवा निन्दाका प्रश्न नहीं है।

३-ऐतिहासिक—इसमें देखा जाता है कि अमुक रचना-का सम्बन्ध अन्य वर्तमान रचनाओंसे क्या है और साहि-त्यकी परम्परामें इसका क्या स्थान है। इसको एक प्रकारसे तुलनात्मक समालोचना कह सकते हैं।

४-मनोवैज्ञानिक—इसमें कविके जीवन और स्वभाव आदिका अध्ययन कर उसकी अन्तर्वृत्तियोंका अध्ययन करना और तब उसीके आधारपर काव्यका रूप निश्चित करना।

यहांपर इतना कह देना आवश्यक है कि यह समालोचना भेद अंग्रेजी समालोचनाके आधारपर किया गया है। हिन्दीमें तो जैसा पहले कहा जा चुका है पहिले केवल गुण-दोष ही देखा जाता था।

समालोचनाका प्रारम्भ भारतेन्दु काल हीमें हो चुका था। पं० बदरी नारायण चौधरीने सर्व प्रथम समालोचना शुरू की। आपने संयोगिता स्वयम्बरकी बड़ी विशद और कड़ी समालो-चना की थी, किन्तु यह समालोचना पुस्तकके रूपमें नहीं थी वरन "आनन्द कादम्बिनी" पत्रमें प्रकाशित हुई थी।

समालोचनाका असली स्वरूप तो आचार्य द्विवेदी जीके समय में ही खड़ा हुआ। इन्होंने प्राचीन तथा अर्वाचीन पुस्तकोंकी समा-

लोचना नाना प्रकारसे की। सर्व प्रथम आपने लाला सीताराम बी० ए० द्वारा अनूदित कालिदासके नाटकोंकी समालोचना की। यह पुस्तकके रूपमें थी। इसमें भाषा तथा भावोंकी समालोचना की गई थी। इसमें विशेषकर दोषोंका ही वर्णन था। इसके बाद द्विवेदीजीकी रचित समालोचनात्मक पुस्तकें 'विक्रमांकदेव चरित्रचर्चा' 'नैषध चरित चर्चा' और 'कालिदास की निरंकुशता' है।

इनके अतिरिक्त आप 'सरस्वती' द्वारा सदा पुस्तकोंकी समालोचना किया करते थे। भाषा तथा व्याकरण ही पर आपका विशेष ध्यान रहता था।

द्विवेदीजीके बाद मिश्रबन्धुओंका नाम उल्लेखनीय है। इन आदर्श भाइयोंने हिन्दी नवरत्नमें नव महा कवियोंकी तुलनात्मक समालोचना की है। पं० कृष्ण बिहारी मिश्रने देव-बिहारी नामक समालोचनात्मक पुस्तक लिखी है। पं० पद्मसिंह शर्मा हिन्दीमें अपना एक अलग स्थान रखते हैं। इन्होंने बिहारी सतसईकी समालोचना पुस्तकके रूपमें लिखी, आप फारसीके अच्छे विद्वान थे, इसलिये उर्दू, फारसीके कवियोंसे आपने बिहारी की तुलना की है। इनकी भाषा फड़कती हुई है। बिहारीके आन्तरिक भावोंका आपने खूब मनन किया था। इसमें सन्देह नहीं कि शर्माजी हिन्दी साहित्यके एक उच्च समालोचक थे।

लाला भगवान दीन 'दीन' ने बिहारी-देव नामकी समालो-

चनात्मक पुस्तक लिखी है। पं० कृष्ण बिहारी मिश्रने अपनी "देव-बिहारी" पुस्तकमें देवको बिहारीसे बढ़कर दिखानेकी कोशिश की है। इसमें हमें कुछ व्यक्तिगत प्रेम, श्रद्धा तथा भक्तिका जोर दिखायी पड़ता है। इसीका उत्तर 'दीनजी'ने "बिहारी-देव" में दिया है। इन्होंने बड़ी गम्भीरता, मार्मिकता तथा विद्वतापूर्ण समालोचना की है। श्रीपदुमलाल पुन्नालाल बख्शीने भी "विश्व-साहित्य" नामकी समालोचनात्मक एक बड़ी पुस्तक तैयार की है। यह गवेषणा पूर्ण है।

किन्तु समालोचकोंमें द्विवेदीजीके बाद यदि किसीका नाम आता है तो प्रखर विद्वान पं० रामचन्द्र शुक्लका ही। आपकी समालोचनाएं अंग्रेजी ढङ्गकी होती हैं। आपने तुलसी, सूर और जायसीपर विदूवत्तापूर्ण समालोचना की है। हिन्दी समालोचना जगत्में आप सर्वश्रेष्ठ हैं। आपकी भाषा, आपका वाक्य-विन्यास तथा आपकी शैली अनोखी है। आपकी समालोचनायें गंभीर होती हैं और उनमें वजन रहता है। आपमें यह खास बात है कि आप भरसक पक्षपातसे अलग रहनेका प्रयत्न करते हैं।

(नोट) यदि वास्तवमें पूछा जाय तो 'समालोचना' का प्रारम्भ "रीति काल" या "लक्षण काल" ही से समझना चाहिये। आचार्य केशवको समालोचना क्षेत्रमें सर्व प्रथम प्रसिद्ध महान समालोचक समझना चाहिये। समालोचनाका इतिहास रीति कालसे ही प्रारम्भ हो जाता है। यह दूसरी बात है कि उस समालोचनाका रूप दूसरा है।

समाचार पत्र

भारतेन्दु कालमें थोड़े वर्षोंके भीतर ही पत्र, पत्रिकाओंका मेला लग गया था। लगभग उत्तरी भारतके प्रत्येक प्रमुख नगरसे एक न एक पत्र प्रकाशित होते थे। कुछ तो आज तक निकल रहे हैं और बहुतसे अब केवल नामके लिये पुस्तकोंके पृष्ठोंमें हैं।

ज्यों-ज्यों देशमें विद्याका प्रचार बढ़ता गया, जनता शान्ति अनुभव करती गई, त्यों-त्यों पत्र-पत्रिकाओंका भी नम्बर खूब बढ़ता चढ़ता गया। इस समयके कुछ प्रमुख पत्रोंका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

मासिक पत्रिकाएं

मासिक पत्रिकाओंमें 'सरस्वती' सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है। यह द्विवेदीजीकी कृपाका फल है कि आज हम इसे इस अवस्थामें देखते हैं। यह साहित्यिक पत्रिका है।

आजकल इसका सम्पादन पं० देवीदत्तजी शुक्ल करते हैं। इधर कुछ वर्षोंके लिये 'सरस्वती' अपने उच्चतम आदर्शसे गिर गई थी किन्तु अब शुक्लजी ऐसे विद्वान और गुण-पारखीके द्वारा पुनः इसकी तरक्की हो रही है। इसमें चुने-चुने गद्य-पद्य लेखकोंकी रचनाएं रहती हैं। इसका प्रकाशन प्रयागसे होता है।

माधुरी

यह लखनऊसे प्रकाशित होती है। आजकल इसका सम्पादन पं० मातादीन शुक्ल करते हैं। यह भी उच्च कोटिकी साहित्यिक पत्रिका है।

सुधा

इसका प्रकाशन लखनऊसे होता है। बाबू दुलारेलाल भार्गव इसके सम्पादक हैं। आजकल इसका सम्पादन बड़े अच्छे ढङ्ग से हो रहा है।

चांद

यह पत्र प्रयागसे निकलता है। पहिले इसके सम्पादक श्री रामरख सिंह सहगल थे, किन्तु अब मुन्शी नवजादिक लाल श्रीवास्तव हैं। यह सामाजिक पत्र है। इसमें स्त्री-शिक्षा तथा अन्य सामाजिक बातोंका ही उल्लेख विशेष रहता है।

वीणा

यह मध्यभारत हिन्दी-साहित्य मण्डल इन्दौरसे प्रकाशित होती है। इसके सम्पादक बा० कालिका प्रसाद दीक्षित हैं। हिन्दी उत्थानकी ओर इसका विशेष ध्यान रहता है।

विश्वमित्र

यह कलकत्तेसे प्रकाशित होता है। इसका सम्पादन डा० हेमचन्द जोशी डी० लिट० करते हैं। इसे साहित्यिक तो नहीं

कह सकते, किन्तु जोशीजी विलायतोंका वर्णन देकर भारतीय जनताको उससे जानकारी कराते हैं। जोशीजी एक विद्वान् व्यक्ति हैं।

हंस

यह काशीसे प्रकाशित होता है। उपन्यास सम्राट् बाबू प्रेमचन्दजी इसका सम्पादन करते हैं। यह पत्र भी साहित्यिक है। इसमें विशेषकर उत्तमोत्तम कहानियां रहती हैं। कहानी कलाकी जानकारीके लिये यह एक उत्तम पत्र है।

विशाल भारत

इसका सम्पादन प्रसिद्ध देश सेवी पं० बनारसीदास चतुर्वेदी करते हैं। कुछ अंशोंमें इसे हम राजनैतिक पत्र कह सकते हैं। यह 'माडर्न रिव्यू' के प्रसिद्ध सम्पादक बा० रामाचन्द्र चटर्जीकी संरक्षतामें कलकत्तेसे प्रकाशित होता है।

कल्याण

इसका प्रकाशन गीता प्रेस गोरखपुरसे होता है। यह एकमात्र प्रसिद्ध मासिक धार्मिक पत्रिका है। इसमें उच्च कोटिके विद्वानों तथा महात्माओंके लेख रहते हैं। इसके सम्पादक जयदयालजी गोयनका हैं।

सुकवि

यह कानपुरसे प्रकाशित होता है। इसका सम्पादन पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' करते हैं। कभी-कभी समालोचनाएं

भी निकलती हैं और भी बहुत-सी मासिक पत्रिकायें प्रकाशित होती हैं किन्तु उनका उल्लेख करना बहुत आवश्यक नहीं है।

साप्ताहिक पत्र

प्रताप

इसका प्रकाशन कानपुरसे होता है। अमर शहीद श्रीगणेश शङ्कर विद्यार्थी द्वारा संस्थापित, संचालित तथा सम्पादित था। आजकल पं० बालकृष्ण शर्मा इसका सम्पादन करते हैं। कुछ ही दिनों पूर्व साप्ताहिक पत्रोंमें इसका स्थान सर्वोच्च था। अब भी उत्तम ढंगसे प्रकाशित होता है।

अभ्युदय

पंडित कृष्णकान्त मालवीय इसका सम्पादन करते थे। श्री पं० मदनमोहन मालवीय द्वारा संस्थापित हुआ था। आजकल पं० वेंकटेश नारायण तिवारी इसके सम्पादक हैं। राष्ट्रीय आंदोलनमें कभी-कभी यह बन्द भी हो जाया करता है।

जागरण

काशीसे बाबू प्रेमचन्दजी इसका सम्पादन करते हैं। यह भी अच्छे ढङ्गका पत्र है।

कर्मवीर

प्रसिद्ध विद्वान माखनलाल चतुर्वेदी इसका संपादन करते हैं। यह खंडवा (मध्यप्रदेश) से प्रकाशित होता है।

बंगवासी, भारतमित्र, विश्वमित्र, लोकमान्य कलकत्तेसे प्रकाशित होते हैं। 'भारतमित्र' और बंगवासी भारतवर्षके सबसे प्राचीन पत्रोंमें हैं।

भारत

प्रयागसे प्रकाशित होता है। पहिले इसका संपादन पं० वेंकटेश नारायण तिवारी करते थे, आजकल ज्योतिप्रसाद 'निर्मल' करते हैं। अब अर्द्ध साप्ताहिक है।

हिन्दी नवजीवन

इसका संपादन महात्मा गांधी करते थे। आजकल बन्द है

स्वतंत्र

कलकत्तेसे प्रकाशित होता था। आजकल बंद है। पहिले इसका संपादन सम्पादकाचार्य पण्डित अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी करते थे। आप एक सिद्धहस्त लेखक और संपादक तथा सम्पादन कलाके मर्मज्ञ हैं। आप कुछ समय तक भारतमित्रका भी सम्पादन कर चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आपकी लेखनी में ओज और जादू है। वर्त्तमान सम्पादकों में आपका नाम सर्व प्रथम है।

हरिजन सेवक

दिल्लीसे प्रकाशित होता है। अछूतोद्धारका ही एकमात्र इसका ध्येय है ।

शिक्षा

यह अर्द्ध मासिक पत्रिका है। इसके सम्पादक काव्य मर्मज्ञ पण्डित सकल नारायण शर्मा हैं। इसका एकमात्र उद्देश्य साहित्य सेवा है। इस पत्रिका द्वारा शर्माजी हिन्दी की अमूल्य सेवा कर रहे हैं।

दैनिक पत्र

आज

दैनिक पत्रोंमें आजका नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसका संपादन काशीजी में पराड़करजी करते हैं। इसकी समानता उच्च कोटिके अंग्रेजी पत्रोंसे की जा सकती है।

विश्वमित्र

कलकत्तेसे प्रकाशित होता है। इसका संपादन पण्डित मातासेवक पाठक करते हैं। यह सामाजिक ढंगका है।

लोकमान्य और भारतमित्र भी कलकत्तेसे ही प्रकाशित होते हैं। लोकमान्य से कुछ अंशोंमें साहित्यकी सेवा भी हो जाती है।

इसके सम्पादक पण्डित रामशङ्कर त्रिपाठीका साहित्यके प्रति प्रेम है। इनके अतिरिक्त आजकल बहुतसे दैनिक-पत्र प्रकाशित हो रहे हैं।

त्रयमासिक

हिन्दुस्तानी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयागसे प्रकाशित होती है। रामचन्द्र टण्डन इसके सम्पादक हैं। हिन्दी प्रचारमें इसका विशेष हाथ है। इसमें समालोचना भी रहती है।

नागरी-प्रचारिणी

बा० श्याम सुन्दर दास बी० ए० इसका सम्पादन करते हैं। इसके विषयमें बहुत कुछ कहा जा चुका है।

इस समय देश भर में पत्रोंकी भरमार है। ऊपर मुख्य-मुख्य पत्रोंका वर्णन किया गया है।*

हिन्दीकोष

जन साधारणकी सहायताके लिये भाषाका कोष होना अत्यावश्यक है। कोष वास्तवमें एक मास्टर है। हिन्दी कोषोंकी संख्या तो काफी हो चुकी है, किन्तु उनमें बड़ी कमी थी। काशी नागरी-प्रचारिणी सभाने हिन्दी-शब्द-सागर प्रकाशित करके कोषके प्रत्येक अङ्गको पूर्ण कर दिया। यह चार खण्डोंमें प्रकाशित हुआ है। इसकी तुलना 'विश्वकोष' से की जा सकती है। कुछ प्रसिद्ध कोषोंके नाम दिये जाते हैं—

*कितनी ही पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक बदल गये हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिए पुस्तकके अन्तमें इसका विवरण दे दिया गया है।

गौरी नागरीकोष, श्रीधर भाषाकोष, शब्दार्थ पारिजात और हिन्दी शब्द कल्पद्रुम।

राष्ट्र-भाषा हिन्दीका प्रचार

यदि हम हिन्दीके इतिहासको सरसरी निगाहसे देखें तो यह साफ पता चल जायगा कि हिन्दीने जो उन्नति गत २१ वर्षोंमें की है वह कदाचित् पचासों वर्षोंमें न हो सकी थी। इस समय इसकी प्रगति दिन दुगुनी रात चौगुनी हो रही है। अब जिधर देखिये उसी ओर हिन्दी प्रचारके लिये संस्थायें बनी हैं और दिन प्रतिदिन बन रही हैं। भारतवर्षमें कोई ऐसा प्रान्त नहीं है जहां इसके प्रचारके लिए धूम न मच गयी हो। संयुक्त प्रदेश, पंजाब, राजपूताना, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रदेश, बंगाल तथा विहार आदि सभी प्रान्तोंमें राष्ट्रभाषा प्रचारके केन्द्र खुल गये हैं। यू० पी० तथा विहारकी बात क्या पूछनी है! हिन्दी तो यहांकी बोलचालकी भाषा ही है।

मद्रासवाले इसके प्रचारके लिये जी-जान से लगे हैं। इसके प्रचारके लिये वे सारे भारतवर्षमें भ्रमण भी कर रहे हैं। मद्रासमें हिन्दी प्रचारके मुख्य कारण महात्मा गांधी हैं। महात्माजीने अपने सुपुत्र देवीदास गांधीको आजसे लगभग १५ वर्ष पूर्व मद्रासमें भेजकर हिन्दी प्रचारकी नींव डाली थी। आज वहांपर हिन्दी पढ़नेवालोंकी संख्या कई हज़ार है। महात्मा गांधीने इतना ही नहीं किया वरन् हिन्दीको

कांग्रेसके द्वारा राष्ट्र भाषा स्वीकृत कराकर हिन्दीकी वह सेवा की है जो आजतक किसी हिन्दी भाषाभाषीने नहीं की है। हिन्दी भाषाको राष्ट्र भाषाका जो गौरव प्राप्त है उसके अनेक कारणोंमें महात्मा गान्धी एक मुख्य कारण हैं।

बंगाल प्रान्तमें भी हिन्दीका प्रचार खूब हो रहा है। कलकत्ता भारतवर्षके व्यापारका सदासे केन्द्र रहा है। समस्त भारतके लोग यहां इकट्ठा होते हैं। आपसमें आदान-प्रदानके लिये हिन्दी ही उनका आधार आजतक है।

मारवाड़ी सज्जनोंके द्वारा यहांपर हिन्दीका खूब प्रचार हुआ, इस सत्यको कोई इनकार नहीं कर सकता। इसके साथ साथ यहांपर हास्यरसावतार कविवर **पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी**, सम्पादकाचार्य **पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी** तथा काव्यकला मर्मज्ञ आचार्य **पं० सकलनारायण शर्म्मा** हिन्दी प्रचारके मुख्य कारण हैं। इन विद्वानोंने बंगाल प्रान्तमें हिन्दीकी जो सेवा की है वह इतिहासमें अपना एक अलगही स्थान रखती है। आजकल **प्रोफेसर ललिता प्रसाद सुकुल** जो कि कलकत्ता विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके प्रधान हैं, हिन्दी प्रचारका विशेष ध्यान रखते हैं। पत्रों द्वारा, व्याख्यानों द्वारा, संस्थाओं द्वारा इन्होंने हिन्दीकी धूम मचा रखी है। सचमुच ऐसे उत्साही और विद्वानोंके ही अथक परिश्रमसे हिन्दीको आज यह गौरव प्राप्त है।

सर आशुतोष मुकर्जीने कलकत्ता विश्वविद्यालयमें हिन्दीको स्थान देकर जो सेवा की है वह हिन्दी साहित्यके इतिहासमें एक अभूतपूर्व घटना है। इसके पहले किसी भी विश्वविद्यालयमें एम० ए० क्लासमें हिन्दी नहीं पढ़ाई जाती थी।

हिन्दी प्रचारकोंमें निजाम हैदराबाद और महाराज बड़ौदा-के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। बड़ौदा नरेशने तो अपने राज्यमें हिन्दी शिक्षाको अनिवार्य कर दिया है।

प्रयागकी हिन्दुस्तानी एकेडेमी' बनारसकी 'काशी-नागरी प्रचारिणी सभा' तथा आराकी 'आरा नागरी प्रचारिणी सभा' ने हिन्दीकी अमूल्य सेवा की है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा और आरा नागरी प्रचारिणी सभा बहुत पुरानी हैं। इनसे सुन्दर तथा खोजपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। पहलेका श्रेय **बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०** को तथा दूसरेका आचार्य **पं० सकलनारायण शर्म्मा** को है। आपकी अवस्था यद्यपि ७० वर्ष की है फिर भी आप हिन्दी प्रचारकके लिये तन, मन, धन, निछावर करते हैं। आप संस्कृतके आचार्य, वेद-वेदान्तके प्रकाण्ड विद्वान तथा काव्य-कलाके मर्मज्ञ हैं। हिन्दी प्रचारका मुख्य आधार विद्यार्थियोंको मानकर आप हिन्दी-शिक्षाका प्रचार करते हैं। उनके लिए आपने एक निबन्धकी पुस्तक लिखी है जो अपने ढंगकी अनोखी है। आचार्यजी हिन्दी प्रचार हीके लिए पटनासे प्रसिद्ध पत्रिका 'शिक्षा' का संपादन करते हैं। पूज्य गोखलेकी तरह इनके जीवनका ध्येय विद्यार्थियोंको शिक्षित बनाना है।

आपकी हिन्दी, संस्कृत गर्भित और लच्छेदार होती है। आचार्य द्विवेदीजीकी तरह आप भाषाकी शुद्धतापर विशेष ध्यान रखते हैं। तत्सम् शब्दोंके विशेष पक्षपाती हैं। आप एक कुशल समालोचक भी हैं। कविताकी तहतक पहुंचनेवाला आपके सदृश शायद ही कोई हो। एक समय आयगा जब हिन्दी जगत् हिन्दीके इस हिमायतीकी कद्र करके अपनेको गौरवशाली समझेगा।

यों तो हिन्दीका प्रचार संस्थाओं, राजाओं, कालेजों, विश्वविद्यालयों तथा पत्रों द्वारा खूब ही हो रहा है किन्तु 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग' का नाम इन सबमें अपना विशेष स्थान रखता है। प्रति वर्ष भारतके किसी मुख्य नगरमें सम्मेलन होता है। प्रायः सभी प्रान्तके विद्वान और साहित्यप्रेमी उपस्थित होते हैं। हिन्दी प्रचारपर तथा हिन्दीमें उच्च कोटिकी साहित्यिक पुस्तकोंके प्रकाशनपर जोर दिया जाता है। सम्मेलन द्वारा परीक्षा भी होती है। सर्वश्रेष्ठ परीक्षा 'उत्तमा' की होती है। इसमें उत्तीर्ण विद्यार्थीको 'साहित्य-रत्न' की उपाधि मिलती है। सचमुच वह साहित्यका रत्न होता भी है।

इसके बाद प्रयाग, आगरा, काशी, लखनऊ, जयपुर, नागपुर आदि युनिवर्सिटियोंमें हिन्दीकी पढ़ाई शुरू हुई। इन विश्वविद्यालयोंके कारण हिन्दीका काफी प्रचार हो रहा है।

समाचार पत्रोंके द्वारा भी हिन्दीकी बड़ी भारी सेवा हो रही है। इसका अन्दाजा समाचार पत्रोंसे ही चलता है।

प्रयागकी 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' भी हिन्दीकी काफी सहायता कर रही है।

पुरातत्त्वविद् रायबहादुर पं० हीराचन्द गौरीशंकर ओझा प्रसिद्ध ऐतिहासिक अन्वेषक हैं। आप प्राचीन कालकी लिपियों और शिला-लेखोंका अध्ययन करके हिन्दीकी बड़ी सहायता कर रहे हैं।

आधुनिक कालकी पद्य धारा

परिचय

आधुनिक कालकी पद्य धाराका वर्णन करनेके पूर्व इतना लिख देना आवश्यक है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके पूर्व कुछ समय तक रीति कालकी पुरानी डफली बजती रही। ब्रजभाषाके शृंगारिक कवि अब भी इधर उधर इश्क-मिजाजी और नाज़ुक खयाली दिखाते रहे। किन्तु भारतेन्दुके उदय होनेपर तो कविताका स्वरूप ही बदल गया। भारतेन्दु बाबूने जैसे गद्यकी भाषाको परिमार्जित किया उसी प्रकार पद्यकी भी भाषाको सुचारु रूपसे सुन्दर साँचेमें ढाला और कविताकी लहरको दूसरी ओर घुमाया। देशप्रेम, जातिप्रेम, साहित्यप्रेम, स्त्री-शिक्षा आदि विषयोंको सामने रखकर नया आदर्श उपस्थित किया। इनके पश्चात् ब्रजभाषा तथा खड़ी बोलीके पद्योंमें दूसरी ही सूरत दीखने लगी। पुराने विचार अब निकाल बाहर किये गये।

भारतेन्दु बाबू से लेकर आजतकके समयमें हमें ब्रज भाषा और खड़ी बोलीकी पद्य रचनायें मिलती हैं। इसलिए इस कालमें 'ब्रज भाषाके कवि' और 'खड़ी बोलीके कवि' शीर्षकसे वर्णन किया जायगा।

ब्रज भाषाके कवि

'भारतेन्दु' बाबू हरिश्चन्द्र

'गद्य धारा' के वर्णनमें भारतेन्दुजीके विषयमें काफी कहा जा चुका है। दो-चार पंक्तियोंमें फिर संक्षिप्त रूपसे कुछ वर्णन दिया जा रहा है।

भारतेन्दु जी हिन्दी साहित्यके 'इन्दु' हैं। इन्होंने केवल गद्य हीकी भाषाको नहीं सुधारा किन्तु उसके साथ-साथ ब्रज भाषाको भी परिमार्जित किया। काव्य-जगत्की पुरानी परिपाटीको छोड़कर आपने कवियोंके सामने नया आदर्श रखा। देशप्रेम, जातिप्रेम, स्त्री शिक्षा, हिन्दी-प्रचार आदि मुख्य विषयपर इनकी कविताएं होती थीं। इनकी मण्डलीमें समस्या पूर्ति भी खूब होती थी। इनके बाद कविताकी धारा बदल गई। रीति कालकी बातें कहीं-कहीं कठिनाईसे देख पड़ती थीं। संवत् १९३७ में भारतवर्षके पत्रोंने इन्हें भारतेन्दुकी पदवीसे सुशोभित किया। इनकी कुछ कवितायें नीचे दी जाती हैं।

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन हित मनहुं सुहाये॥
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप बारन तीरको सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि सेवा-हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥

रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो॥
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो।
सबके पहिले विद्याफल निज गहि लीनो॥
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी न जाई॥

विहारीके दोहोंपर कैसी उत्तम कुण्डलिया आपने बनाई है—

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।
जा तनकी झाईं परे, स्याम हरित दुति होइ॥
स्याम हरित दुति होइ, परे जा तनकी झाईं।
पांय पलोटत लाल, लखत सांवरे कन्हाई॥
श्रीहरिचन्द वियोग पीतपट मिलि दुति हेरी।
नित हरि जा रंग रंगे हरौ बाधा सोई मेरी॥

चलहु बीर उठि तुरत सबै जय ध्वजहिं उड़ाओ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रन रंग जमाओ॥
परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ।
केसरिया बानो सजि सजि रन कंकन बाधौ॥

*   *   *   *

छन महं नासहिं अभि नीच जवनन कहं करि छय।
कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय॥

अब भक्तिकी लहर देखिये—

भरोसो रीझन ही लखि भारी।
हमहूं को विश्वास होत है मोहन पतित उधारी॥
जो ऐसा सुभाव नहिं हो तो क्यों अहीर कुल भायो।
तजिकै कौस्तुभ सो मनि गल क्यों गुंजा हार धरायो॥
कीट मुकुट सिर छोड़ि पखौआ मोरनको क्यों धार्‌यो।
फेंट कसी टेंटिन पै मेवनकी क्यों स्वाद बिसार्‌यो॥
ऐसी उलटी रीझ देखि कै उपजत हैं जिय आस।
जग निन्दत हरिचन्दहुको अपनावहिंगे करि दास॥

स्त्री धर्म

जगतमें पतिव्रत सम नहिं आन।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जगमें यासु समान॥
अनुसूया सीता सावित्री इनके चरित प्रमान।
पति देवता तीय जगधन धन गावत वेद पुरान॥
धन्य देस कुल जहं निवसत हैं नारी सती सुजान।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य व्याह असथान॥
सब समर्थ पतिबरता नारी इन सम और न आन।
याही ते स्वर्गहुमें इनको करत सबै गुन गान॥

पं० प्रताप नारायण मिश्र

आपका वर्णन गद्य धारामें हो चुका है। आप भारतेन्दु मण्डलीमें होनेके कारण कवि और लेखक दोनों थे। इनकी कविता सरस और प्रभावोत्पादक होती थी। आपकी रचनायें हास्य रस और विनोद पूर्ण होती थीं। आपमें मनोरंजनकी अच्छी सामग्री है। इनकी काव्य रचनाओंमें शृङ्गार विलास, प्रेम पुष्पावली अति प्रसिद्ध हैं। इनकी कुछ रचनायें नीचे दी जाती हैं—

बुढ़ापा

हाय बुढ़ापा तोरे मारे अब तो हम नकन्याय गयन।
करक धरत कछु बनतै नाहीं कहां जान औ कैस करन॥
छिन भरि चटकि छिनै मां मद्धिम जस बुझात खन होय दिया।
तैसे निखवख देख परत हैं हमरी अक्किलके लच्छन॥

* * * *

तुतैं दान जौ करिय तो, होय महा कल्यान।
बहुत बकाये लाभका, समुझ जाव जजमान॥

बद्रीनारायण चौधरी (प्रेमघन)

आपकी रचना सरस और भावपूर्ण होती थी। आपकी कविताओंमें राजनीति विषयक बातें भी रहती थीं। कवितामें आप अपना नाम 'प्रेमघन' रखते थे।

इनको रची हुई कई पुस्तकें हैं। कुछके नाम ये हैं—शुभ सम्मिलन, आत्मोल्लास, शोकाश्रु विन्दु, भारत बधाई, मंगलाशा आदि। नमूनेके तौरपर कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं:—

हुआ प्रबुद्ध वृद्ध भारत निज आरत दशा निशाका।
समझ अन्त अतिशय प्रमुदित हो तनिक तब उसने ताका।'
अरुणोदय एकता दिवाकर प्राची दिशा दिखाती।
देखा नव उत्साह परम पावन प्रकाश फैलाती॥

बगियान बसंत बसेरो कियो, बसिये तिहि त्यागी तपाइयेना।
दिन काम कुतूहलके जे बने, तिन बीच वियोग बुलाइयेना॥
घन-प्रेम बढ़ाय कै प्रेम अहो, विथा वारि वृथा बरसायेना।
चितै चैतकी चाँदनी चाह भरी, चरचा चलिवेकी चलाइयेना॥

जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'

बाबू जगन्नाथदासका जन्म सं० १६२३ में काशीमें हुआ। आप वैश्य थे। आपकी शिक्षा बी० ए० तक हुई थी। बी० ए० पास करनेके बाद ये कुछ काल तक आवागढ़ रियासतमें रहे। तदनन्तर महाराज अयोध्याके यहां प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। महाराजकी मृत्युके पश्चात् आप महारानी साहिबाके कृपापात्र होकर मृत्युपर्यन्त उनके प्राइवेट सेक्रेटरी रहे।

हिन्दीकी जो सेवा इन्होंने की उसके लिये हिन्दी-साहित्य सदा ऋणी रहेगा। इनकी तुलना ब्रजभाषाके श्रेष्ठ कवि देव और पद्माकरसे की जा सकती है। ब्रजभाषाको वर्तमान कालमें शुद्ध और संयत बनानेवाले आप थे। आपके लिखे हुए कई ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। 'गंगावतरण' नामका एक उत्कृष्ट काव्य हिन्दी भाषामें आप ही द्वारा रचा गया है। आपकी लिखी हुई पुस्तकों-

में 'हरिश्चन्द्र काव्य' 'उद्धव शतक' 'शृङ्गार शतक' आदि अति प्रसिद्ध हैं। आप ब्रजभाषाके सर्व श्रेष्ठ कवि तो थे ही, किन्तु इसके साथ ही साथ खड़ी बोलीके भी पूरे हिमायती थे। छात्रोंके कवि सम्मेलनोंमें आप पधारकर उन्हें खूब प्रोत्साहित करते थे। खेद है कि ऐसा धुरन्धर कवि अभी कुछ ही समय पूर्व इस संसारको छोड़कर चल बसा। इनको एक प्रकारसे ब्रजभाषा-का अन्तिम श्रेष्ठ कवि समझना चाहिए। इनके सवैये और कवित्त अति प्रसिद्ध हैं। बिहारी सतसईकी आपने पांडित्यपूर्ण टीका की है। इनके कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं :—

सुण्ड गहि आतुर उबारि धरनी पै धारि,
विवस बिसारि काज सुरके समाज कौ।
कहै 'रतनाकर' निहारि करुनाकी कोर,
बचन उचारि, जो हरैया दुख साज कौ॥

अंबु पूरि हगनि बिलम्ब आपनोई लेखि,
देखि देखि दीन्ह छत दन्तनि दराज कौ।
पीत पट्ट लै लै कै अंगौछत सरीर कर,
व्यञ्जनि सौं पोंछत भुसुण्ड गजराज कौ॥

कहत विधाता सौं बिलखि जमराज भयौ,
अखिल अकाज है हमारी राजधानी कौ।
सुरसरि दीन्हीं ढारि भूपके भुलावै माहिं,
कीन्यौ नाहिं नेकहूं विचार हित हानीकौ॥

निज मरजाद पै कछू तो ध्यान दीजै नाथ,
कीजै इमि प्रगट प्रभाव बर बानी कौ।
पावै नर नारकी न रंचक उचारि क्यों हूं,
गंगाकौ गकार औ चकार चक्र पानी कौ॥

रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण'

ब्रज भाषा साहित्यमें अमर कीर्ति रखनेवालोंमें 'पूर्ण' जी भी हैं। हिन्दी संसार इनका सदा आभारी और कृतज्ञ रहेगा। आपका जन्म संवत् १९२५ में जबलपुरमें हुआ था। आप जन्मना श्रीवास्तव कायस्थ थे। विद्यार्थी अवस्थामें आप सदा उच्चतम स्थान पाते रहे। कलकत्ता विश्वविद्यालयसे बी० ए० बी० एल० पास कर आप कानपुरमें वकालत करते थे। कानपुर जिलेके घाटमपुर तहसीलमें इनके पूर्वज रहते थे।

'पूर्ण' जी ब्रजभाषाके कवि होते हुए भी केवल नायक नायिकाओंमें ही नहीं फंसे रहे। आपकी कृतियोंमें जहां हम श्रृङ्गारिक चीजें पाते हैं वहीं देश प्रेम, जाति प्रेम, धर्म-प्रेमका भी अच्छा गान पाते हैं। इनकी कविताएं मधुर, आकर्षक और हृदयको पिघलानेवाली होती थीं। समयका प्रवाह इनकी कवितामें खूब देख पड़ता है। आपकी भाषा शुद्ध परिमार्जित और भावयुक्त है। कहीं भी बिना मतलबके शब्द नहीं पाये जाते। आपने 'रसिक वाटिका' 'पत्रिका' तथा 'रसिक समाज' द्वारा ब्रजभाषाकी खूब सेवा की। खड़ी बोलीमें भी

आप कविता करते थे। प्रकाण्ड विद्वान होनेके कारण आप संस्कृत गर्भित और फारसी अङ्गरेजीके भी शब्द उचित स्थानपर लाते थे। आपकी रचनायें मौलिक और अनूदित दोनों हैं। 'धाराधर धावन' 'मेघदूतका' पद्यानुवाद है। चन्द्रकला भानु-कुमार नाटक आपका स्वतन्त्र नाटक है। आपकी कविताओंका संग्रह 'पूर्ण-संग्रह'के नामसे प्रकाशित हुआ है। आपकी मृत्यु सं० १९७२ में हुई।

आपकी कुछ कवितायें नीचे दी जाती हैं। प्रकृति वर्णनमें आप किस तरह अपनी प्रतिभा और सूक्ष्मदर्शिता दिखलाते हैं—

झूमि झूमि लोनी लोनी लतिका लवंगनकी,
भेंटती तरुन सों पवन मिस पाय-पाय।

कामिनी-सी दामिनी लगाये निज अङ्क तैसे,
साँवरे बलाहक रहे हैं नभ छाय-छाय।

घनश्याम प्यारी वृथा कीन्हों मान पावसमें,
सुनु तौ पपीहाकी रटन उर लाय-लाय।

प्रीतम मिलन अभिलाषी बनिता-सी लखौ,
सरिता सिधारी ओर सागरके धाय-धाय।

खड़ी बोलीमें लिखित एक छोटी सी "स्वदेशी कुन्डल" नामकी पुस्तिका है। उसका एक कुण्डलिया नीचे दी जाती है—

पूरन ! भारतवर्षके सेवा-प्रेमी लोग,
कर सकते हैं दूर दुख ठानै यदि उद्योग।

ठानै यदि उद्योग कलह तजकर आपुसका,
नाना विध उपकार कर डालें उसका।

करता है निर्देश जगतका स्वामी 'पूरन',
करें सुजन उद्योग कामना होगी पूरन।

पूज्य गोखलेकी मृत्युपर कैसा हृदयद्रावक उद्गार है:—

सज्जनो, देशानुरागी भाइयो, दीन भारतके हितैषी भाइयो, क्या कहें, किससे कहें, कैसे कहें? घोर दुःख चुपचाप भी कैसे सहें, आज अपना देश दुःखका धाम है, हाय है उस गोखलेका नाम है, छा रहा हा हंत! हाहाकार है, देश क्या संसार शोकागार है। हाय रे दुर्भाग्य भारत क्या हुआ तू बहुत है आज आरत क्या हुआ? हाय! थी कैसी भयङ्कर वह घड़ी, तारसे जब देशपर बिजुली पड़ी, गोखले! तुम हाय सुरपुरको चले! गोखले! हा गोखले! हा गोखले!

पण्डित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

हास्य-रसावतार पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदीका जन्म नदिया जिले (बंगाल) में संवत् १९३२ में हुआ था। आप जातिके माथुर चौबे हैं। चतुर्वेदीजीका नाम हिन्दी जगत्में अति प्रसिद्ध है। आपकी बनाई हुई अनुप्रास, अन्वेषण, राष्ट्रीय गीत कृष्णचरित आदि पुस्तकें प्रसिद्ध हैं।

आपकी कविताओंमें हास्य रसकी पुट रहती है। जनताको हंसा देना तो आपके लिए साधारणसी बात है। आपकी रचनायें मधुर और सरस होती हैं। भावोंका अच्छा प्रकाश रहता है। भाषा शुद्ध होती है। व्याकरणका ध्यान आपके बराबर विरले ही रखते होंगे। आपकी कविताओंमें राष्ट्रप्रेम, धर्मप्रेम तथा

हिन्दी प्रेम भरा रहता है। आप १२ वें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति भी हो चुके हैं। आजकल आप कलकत्तेमें रहकर साहित्य सेवा करते हैं। 'बिहार प्रादेशिक-साहित्य-सम्मेलन' के भी आप सभापति रह चुके हैं अब आप इस संसार नहीं रहे। आपकी कुछ लाइनें नमूनेके तौरपर नीचे दी जाती हैं :—

अपनी भाषा है भली, भलो आपनो देस।
जो कुछ अपनो है भलो, यही राष्ट्र संदेस॥
जो हिन्दू हिन्दी तजै, बोलै इङ्गलिश जाय।
उनकी बुद्धि पै पर्‍यो, निहचय पाथर आय॥
देशनमें भारत भलो, हिन्दी भाषन मांहिं।
जातिनमें हिंदू भली, और भली कछु नाहिं॥

* * * *

नया काम कुछ करना बाबा, नया काम कुछ करना।
दूध दही घृत मक्खन छोड़ो, चरबी पर चित धरना॥
गो सेवाको दूर भगावो, पालो घोड़े कुत्ते।
भगतिनियोंकी पूजा करके, पितरोंको दो बुत्ते॥
जो न बने कुछ तुमसे भाई, पीटो पकड़ लुगाई।
अथवा नाचो ताक धिना धिन, सिर पर उसे बिठाई॥

पं० सत्यनारायण 'कविरत्न'

जीवनकी सादगीही जिसका भूषण था, देशका प्रेम ही जिसकी निष्ठा थी, अपनेको सबसे छोटा समझना ही जिसका

गर्व था, ऐसे पं० सत्यनारायण 'कविरत्न' का जन्म सं० १६५१ में अलीगढ़में हुआ। आप सनाढ्य ब्राह्मण थे। भगवानको सत्य-नारायणजीकी बालक्रीड़ा देखकर स्पर्धा हुई और थोड़ी ही अवस्थामें माता-पिता आपको इस जगत्में निस्सहाय छोड़कर चल दिये। दयालु मौसीने इनका पालन करना प्रारंभ किया। मौसीके स्वर्गवास होनेपर आप धांधूपुर (आगरा) में रघु-नाथजीके मन्दिरके पुजारी बाबा रघुबर दास ब्रह्मचारीके यहां रहने लगे

आप दीन-हीन होते हुए भी बी० ए० तक अध्ययन करते रहे, किन्तु एक दिन यह सुनकर कि पढ़ना ही जीवनका लक्ष्य नहीं है, आप बिना बी० ए० पास किये ही कालेज छोड़ दिये।

कविताका प्रेम तो आपमें कूट-कूटकर भरा था। कविता पढ़नेका ढङ्ग निराला था। इनकी कवितापर स्वामी रामतीर्थ बेहोश हो जाया करते थे। करुणरस इनमें प्रधान था। देश-प्रेम भरा था। भारतके वीरों तथा वीरांगनाओंपर आप कविता खूब किया करते थे। सरोजिनी नायडू, गोपालकृष्ण गोखले आदिपर मनोहारिणी कविता बनाये हैं। इनकी भाषा सरल और मधुर है। हृदयकी सच्ची अनुभूति है। इसी कारण इनकी रचनायें पाठक तथा श्रोताके हृदयमें प्रवेश कर जाती है।

शोकके साथ लिखना पड़ता है कि भारतका एक लाल, हिन्दीका दुलारा सं० १६७१ में इस संसारसे चल बसा। आपने 'उत्तम रामचरित' और 'मालती माधव' का संस्कृतसे भाषामें

अनुवाद किया है। ये नाटक अपने ढंगके अनोखे हैं। भावोंकी खूब रक्षा की गई है।

नमूनेके तौरपर इनकी कविताओंकी कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं।

श्री राधावर निज जनबाधा सकल नसावन।
जाकौ ब्रज मनभावन जो ब्रजको मनभावन॥
रसिक-सिरोमनि मन हरन, निरमल नेह निकुंज।
मोद भरन उर सुख करन, अविचल आनन्दपुंज॥
रंगीलो सांवरो ॥१॥

माधव अब न अधिक तरसैये।
जैसी करत सदा सों आये, वही दया दरसैये।
मानि लेउ, हम कूर कुढंगी, कपटी कुटिल गंवार।
कैसे असरन सरन कहा तुम, जनके तारन हार॥
तुम्हरे अछत तीन तेरह यह, देस दसा दरसावै।
पै तुमको यहि जनम धरेकी, तनिकहु लाज न आवै॥
आरत तुमहिं पुकारत हम सब, सुनत न त्रिभुवन राई।
अंगुरि डारि कानमें बैठे, धरि ऐसी निठुराई॥
अजहुं प्रार्थना यही आपै सों, अपनो विरुद संवारौ।
सत्यदीन दुखियनको विपता, आतुर आइ निवारौ॥

वियोगी हरि

आपका जन्म बुन्देलखण्डकी छत्रपुर रियासतमें सं० १६५३ में हुआ था। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। आपका पहलेका नाम

पं० हरिप्रसाद द्विवेदी है। बाल्यकाल हीसे आप एक सात्विक वृत्तिके मनुष्य हैं। महारानी छत्रपुरकी कृपा तथा उनकी छत्र-छायामें ही आपका समय बीता। महारानीजीके मरनेके बाद आपने स न्यास ले लिया।

वियोगीजी एक उच्च कोटिके कवि हैं। ब्रजभाषामें आपकी कवितायें अनूठी होती हैं। खडी बोलीमें भी आप कविता करते है, किन्तु उसमें उन्हें कोई खास यश नहीं मिला है। ब्रजभाषामें आप ही एक ऐसे कवि हैं जो आज भी पुरानी कृष्णधाराका सुर अलापते हैं। आपकी रचनायें, प्रेम, भक्ति आदि विषयों-पर तो होती ही हैं आपकी राष्ट्रीय कवितायें भी बड़ी प्रभाव डालनेवाली हैं। वीररसपर इनकी 'वीर सतसई, एक अमूल्य पुस्तक है। साहित्य सम्मेलनने इस रचनापर आपको १२००) रु० पुरस्कार स्वरूप दिया था। इस रचनामें उत्साह है, उमंग है और है ओज। वीर सतसई मुर्दे को जिन्दा करनेवाली वस्तु है। इसकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। आप गद्यके एक सुयोग्य लेखक हैं। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं और कइयोंका सम्पादन भी किया है। ब्रजमाधुरी सार, संक्षिप्त सूरसागर, बिहारी संग्रह, हिन्दी पद्यरत्नावली आदि संपादित पुस्तकें हैं। राष्ट्रीय पुस्तकें तथा वीर सतसई आपकी मौलिक चीजें हैं। प्रेमशतक, प्रेमाञ्जलि, मेवाड़केसरी आदि भी मौलिक रचनायें हैं। उदाहरणके लिये कुछ पंक्तियां नीचे दी जाती हैं—

श्री ब्रजराज कुंवरकी बानिक कैसी आजु बनी।
बनतें बन्यो लटकि झुकि झूमत आवत गोप धनी॥
उड़ति गगन गो धुरि धुंध चहुं छाई घुमरि घनी।
मानहु सुखद सांझ सुख-बरषा बरसति ब्रज अवनी॥१॥

वीर सतसईसे

अणु-अणु पै मेवाड़ के, छपी तिहारी छाप।
तेरे प्रखर प्रतापते, राणा प्रबल प्रताप॥
जगत जाहि खोजत फिरै, सो स्वतंत्रता आप॥
विकल तोहिं हेरत अजौं, राणा निठुर प्रताप॥
माथ रहौ वा ना रहौ, तजै न सत्य अकाल।
कहत कहत ही चुनि गये, धनि गुरु गोविन्द लाल॥

पं० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' एम० ए०

अलंकार और पिंगलके मर्मज्ञ, हिन्दी साहित्यके प्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' का जन्म सं० १९५५के चैत्र मासमें कानपुर जिलाके अन्तर्गत घाटमपुर तहसीलके दुरौली ग्राममें हुआ था। आपके पिता पं० कुंजविहारी शुक्ल कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। पिताजीको कवितासे प्रेम होनेके कारण 'रसाल' जी पर बाल्यकाल ही से इसका प्रभाव पड़ा था।

प्रयाग विश्वविद्यालयसे हिन्दीमें एम० ए० पास करके आप कान्यकुब्ज कालेज लखनऊमें कुछ काल तक प्रोफेसर रहे। कुछ

कालतक आप 'कान्यकुब्ज' का सम्पादन भी करते रहे। आजकल आप प्रयाग विश्वविद्यालयमें प्रोफेसर हैं।

यों तो शुक्लजीका नाम 'हिन्दी साहित्यके इतिहास' से अमर रहेगा ही किन्तु इसके साथ साथ आप एक अच्छे कलाविद कवि भी हैं। शुक्लजी ब्रजभाषाके एक उदीयमान कवि हैं। आपकी भाषा शुद्ध, साहित्यिक और प्रामाणिक होती है। वर्त्तमान समयके कवियोंमें आपका बड़ा ऊंचा स्थान है। यद्यपि आपकी कविता सम्बन्धी कोई पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई है, किन्तु आपके फुटकर छन्द अति प्रसिद्ध हैं। जिस कवि-सम्मेलनमें आप चले जाते हैं उसकी शान जम जाती है। अलंकार पीयूष, अलंकार कौमुदी, नाट्यनिर्णय आदि कई प्रसिद्ध पुस्तकें आपने लिखी हैं, प्रयागकी प्रसिद्ध संस्था 'रसिक मंडल' के आप प्राण हैं। उदाहरणके लिये आपकी कुछ कवितायें नीचे दी जाती हैं।

नैन-मीन

ह्वै कै दीन औ मलीन जीवैं वै न पानी गये,
पानीके गये हूं इन्हें तैसेईमें हेरे हैं।
वै तौ नेह चाहती न नैसुक 'रसाल' कहैं,
चाहि औ सराहि डारै नेहईमें डेरे हैं।
बंसी लाय बेधैं उन्हें मनुज अहेरि आय,
बंसीधर हूं कौ बेधि कीन्हें उन चेरे हैं।

बेंचत उन्हैं हैं नर इन पै बिकाय जात,
नैन तौ नकाहे ये अनोखे मीन तेरे हैं।
जाने विधि भानुजा सरस्वति ह्वै ज्ञान गिरा,
हियहिमसैल तैं हमारें उमगानी हैं।
तेई याग पुन्यकौ प्रयाग पाय गोपिन की,
भक्तिकी भगीरथि भै उमगि बिलानी है।
एकै रंग रूप ह्वै त्रिवेनी लौं तहां तें चलि,
नन्द जसुदा कै नैन नीर उफनानी है।
राधाकी रसीली प्रीति-रीति राह सौं अथाह
रावरे सनेह सुधा सिन्धु मैं समानी हैं।
अन्तर न व्यापै कहूं ऐसि ऐ निरन्तर ही,
लगन रहै हैं एक प्रीति जोग वारे हैं।
सुकवि 'रसाल' है विचित्र गति प्रेमिनकी
बार है न तिथि है वै अतिथि विचारे हैं।
ग्रहकी कहा हैं औ उपग्रह कहा है जब,
निग्रह निरवारे निज विग्रह बिसारे हैं।
चन्द सौ दुचन्द है अमन्द मुख चन्द एक,
प्रेमिन कै नभ मैं नक्षत्र हैं न तारे हैं।

—:o:—

खड़ी बोलीके कवि

परिचय

खड़ी बोली सर्वप्रथम पद्यके रूपमें खुसरोकी कवितामें दिखाई पड़ती है। इसके बाद १८वीं विक्रमाब्दीके पूर्वार्द्धमें आगरेके 'नजीर'

कवि (जन्म सं० १७६७ मृत्यु १८७७) ने कृष्णलीला सम्बन्धी पद्य खड़ी बोलीमें बनाया। फिर हमें इंशाकी 'रानी केतकीकी कहानी' में खड़ी बोली पद्यमें व्यवहरित दिखाई पड़ती है। तदनन्तर खड़ी बोलीके गद्यका रूप भारतेन्दु कालमें खूब बढ़ा और भारतेन्दु बाबूने 'दशरथ विलाप' खड़ी बोलीमें लिखा। इसके पश्चात् खड़ी बोलीको पद्यमें प्रयोग करनेवाले पं० श्रीधर पाठक थे। उन्होंने खड़ी बोलीमें खूब रचना की। वास्तवमें खड़ी बोलीके वे ही आदि कवि हैं। उनके बाद तो खड़ी बोलीकी अविरल धारा बह चली। इसमें संदेह नहीं कि कुछ कवियोंने जैसे लाला भगवानदीन 'दीन' पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा नाथूराम शङ्कर शर्मा आदिने ब्रज-भाषामें भी अच्छी कवितायें की हैं। खड़ी बोलीमें कविता करनेवाले सभी कवियोंका उल्लेख करना असम्भव है, इसलिये कुछ मुख्य कवियोंका ही वर्णन किया जायगा।

पं० श्रीधर पाठक

पाठकजीका जन्म सं० १६१६ में आगरा जिलाके जोन्धरी गांवमें हुआ था। आप बहुत काल तक गवर्नमेण्ट कर्मचारी रहे। कुछ समयके पश्चात् पेन्शन लेकर आप प्रयागमें रहने लगे। प्रयागमें अबतक इनका बंगला है और इनके परिवारके लोग रहते हैं।

पाठकजी ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनोंके कवि थे। यद्यपि इन्हें खड़ी बोलीमें उतनी सफलता नहीं मिली है जितनी ब्रज

भाषामें। फिर भी आप खड़ी बोलीके आचार्य कहे जाते हैं। इनको खड़ी बोलीकी कवितामें भी ब्रजभाषाका रूप पाया जाता है। गोल्ड स्मिथकी तीन पुस्तकोंका आपने अच्छा अनुवाद किया है। उनके नाम ये हैं।

एकान्तवासी योगी, ऊजड़ ग्राम और श्रान्तपथिक। इनकी अन्य पुस्तकें भी अति प्रसिद्ध हैं। कुछके नाम दिये जाते हैं—आराध्य शोकांजलि, श्री गोखले प्रशस्ति, काश्मीर सुषमा, मनो-विनोद आदि।

प्रकृतिके आप बड़े प्रेमी थे। इनकी दृष्टि बड़ी ही पैनी थी। देशका प्रेम तो इनमें कूट-कूट कर भरा था। 'भारत गीत' इसका प्रज्ज्वलन्त उदाहरण है। बाबू मैथिलीशरण गुप्तपर इनके काश्मीर सुषमासे कुछ न कुछ प्रभाव दीख पड़ता है।

काश्मीर सुषमासे

खिली प्रकृति-पटरानीके महलन फुलवारी।
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार पिटारी।
प्रकृति यहां एकान्त बैठि निज रूप संवारति।
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति।

श्रान्त पथिकसे

आवेगा एक समय जब कि सौभाग्य शून्य होकर यह देश।
वीरोंका पितृगेह त्रिज्ञ विद्वानोंका आवास अशेष।
धन तृष्णाका घृणित एक सामान्य कुण्ड बन जावैगा।
नृपति शूर विद्वान आदि कोई भी मान नहिं पावैगा॥

भारत गीतसे

हे वंदनीय भारत, अभिनंदनीय भारत ।
हे न्यायबंधु निर्भय, निर्बंधनीय भारत ॥
मम प्रेम-प्राणि-पल्लव-अवलम्बनीय भारत ।
मेरा ममत्व सारा तुझमें समा रहा है ।
भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है ॥

पं० नाथूरामशंकर शर्मा

इनका जन्म संवत् १६१६ में हरदुआगंज (अलीगढ़) में हुआ था। आप गौड़ ब्राह्मण थे। आपने कुछ कालतक वैद्य वृत्ति भी की। इनका पं० प्रतापनारायण मिश्रसे घनिष्ट सम्बन्ध था। अभी कुछ ही वर्ष पहिले शर्माजीकी मृत्यु हो गई। आप हिन्दीके स्तम्भोंमेंसे थे।

शंकरजी पहिले ब्रजभाषामें कविता करते थे। पुनः खड़ी बोलीमें लिखने लगे।

इनका विशेष नाम खड़ी बोली हीमें हुआ। आप समस्या पूर्ति करनेमें तो सदा अद्वितीय रहते थे। इस कार्यमें इन्हें न जाने कितने पदक और पुरस्कार मिले थे। आर्य समाजी होनेके कारण आपकी कविताओंमें कुछ अक्खड़पन भी है। इन्होंने छोटी-बड़ी कई पुस्तकें लिखी हैं। कुछ तो छप गई हैं और कुछ अभी नहीं छपी हैं। प्रकाशित पुस्तकोंमें शंकर सरोज, अनुराग-रत्न, गर्भरण्डा रहस्य प्रसिद्ध हैं। आपकी विशेष रचनायें समाज-सुधार सम्बन्धी हैं।

शंकरजीके पुत्र हरिशंकर शर्मा आजकल अलीगढ़में सम्पादक हैं और खड़ी बोलीके अच्छे कवि भी हैं। नमूनेके तौरपर शंकरजीकी कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं—

ईस गिरिजाको छोड़ यीशु गिरिजामें जाय,
शंकर सलोने मैन मिस्टर कहावेंगे।
बूट पतलून, कोट, कम्फटर-टोपी डाट,
जाकटकी पाकटमें 'वाच' लटकावेंगे॥
घूमेंगे घमंडो बने रंडीका पकड़ हाथ,
पियेंगे बरण्डी मीत होटलमें खावेंगे॥
फ़ारसीकी छारसी उड़ाय इङ्गरेज़ी पढ़,
मानों देवनागरीका नाम हो मिटावेंगे॥

* * * *

बोझ लदे हय हाथिन पै खर खात खड़े नित जाय खजाये।
बंधनमें मृगराज पड़े शठ स्यार स्वतन्त्र पुकारत पाये॥
मान सरोवरमें बिहरें बक, 'शंकर' मार मराल उड़ाये।
मान घटे गुरु लोगनको जग वंचक पामर पंच कहाये॥

आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी

आधुनिक कालके दो महापुरुषोंका नाम हिन्दी साहित्यमें अमर रहेगा—भारतेन्दु बाबू और आचार्य द्विवेदीजी। जैसे भारतेन्दु बाबूने गद्यको सुव्यवस्थित कर ब्रजभाषाको भी परिमार्जित किया उसी प्रकार आचार्यजीने हिन्दी, खड़ी बोली, गद्य और

पद्यको शुद्ध, परिष्कृत और परिमार्जित कर वह स्वरूप दिया जो आजतक किसीने नहीं दिया।

आचार्यजीका जन्म संवत् १६२१ में रायबरेली जिलेके अन्तर्गत दौलतपुर ग्राममें हुआ था। कहा जाता है कि जन्मके आधे घण्टे बाद इनकी जिह्वापर सरस्वतीका बीज मन्त्र लिखा गया था और उसी कारण सरस्वतीका यह लाड़िला इतना विख्यात हुआ।

जिस प्रकार राजनीतिमें महात्मा गांधी आदरणीय हैं, उसी प्रकार साहित्यके क्षेत्रमें द्विवेदीजी पूज्य थे। इनकी प्रकृति, इनका स्वभाव, इनकी चाल-ढाल, इनका रहनसहन सभी आदर्शमय है। गुलामी या मिट्ठू बाजी, जी हुजूरी तो आपने कभी सीखा ही नहीं। स्पष्टवक्ता तो आप ऐसे हैं कि बहुधा लोग इनसे चिढ़से जाते थे।

आप अंग्रेजी, हिन्दी या अन्य किसी भाषाके न तो एम० ए० थे और न तो डी० लिट् ही थे किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बड़े-बड़े एम० ए० और डी० लिट् आपकी संरक्षतामें बहुत कुछ सीख चुके हैं। थोड़ा सा अध्ययन करनेके बाद आप रेलवेमें कुछ दिन काम करते रहे और अच्छे पद पर रहे। नौकरीकी हालतमें भी आप अपनी रचनाओंको पत्रोंमें देते रहे। उच्च पदाधिकारीसे अनबन होनेके कारण आप नौकरीको लात मारकर घर चले आये।

सरस्वतीका सम्पादन कार्य हाथमें लेकर आपने साहित्यमें

एक नये जीवनका संचार किया। आप हिन्दी, संस्कृतके अच्छे कवि थे। खड़ी बोलीमें प्रायः बहुतसे प्रसिद्ध कवि आपके द्वारा प्रोत्साहित और बढ़ाये गये थे। उर्दू ,फारसी, बंगला, गुजराती, मराठीपर भी आपका पूरा अधिकार था। आपने कई पुस्तकोंके अनुवाद किये और मौलिक रचनायें भी की है। आपकी निबन्ध, समालोचना, कविता, अनुवाद सम्बन्धी बहुत सी पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। अनुवादोंमें अंग्रेजी और बंगलाके भी अनुवाद शामिल हैं। कुछ पुस्तकोंका नाम नीचे दिया जाता है—महाभारत, रघुवंश, मेघदूत, कुमारसम्भव, नाट्यशास्त्र, वेकन-विचार रत्नावली, कालिदासकी निरंकुशता (समालोचना) आदि।

कुछ समयसे आप सम्पादन कार्यसे विराम लेकर अपनी जन्म भूमि (दौलतपुर) में एक तपस्वीकी तरह जीवन व्यतीत कर रहें थे। वहां भी दर्शनोंके लिए साहित्यिकोंका जमघट लगा रहता था। वहां भी आप ग्राम सेवा, छात्रसेवा, दीन सेवामें तत्पर रहते थे। अब आप इस असार संसारमें नहीं रहे। साहित्य सम्मेलनका सभापति होनेके लिए आपसे बहुत आग्रह किया गया किन्तु आपने कभी उसे स्वीकार न किया। सच भी हैः—

परम आत्म संतोष हेतु जे चरित सुधारत।
कहुं सज्जन स्वर्गाशा करि निज जन्म बिगारत॥
करि कर्तव्य सुधार चरित संतुष्ट सुखी जो।
स्वर्ग लोक सूं (सम्मेलनसुं) वरु औरनको दान करि सकत सो॥

आपकी कुछ लाइनें उद्धृत की जाती :—

चारु चरित तेरे चतुरानन ! भक्ति युक्त सब गाते हैं।
इस सुविशाल विश्वकी रचना तुझसे ही बतलाते हैं॥
कहते हैं तुझमें चतुराई है इतनी सविशेष।
जिसको देख चकित होते हैं शेष महेश रमेश॥
चतुर्वेदको शपथ तुझे है मुझे बात यह बतलाना।
तूने भी, कह, क्या अपनेको महाचतुर मनमें माना॥

* * * *

आम मंजरीका आस्वादन कोकिलने कर बारम्बार,
अरुण कण्ठसे किया शब्द जो महामधुरताका आगार॥
'हे मानिनी कामिनी ! तुम सब अपना मान करो निःशेष'
इस प्रकार मन्मथ महीपका हुआ वही आदेश विशेष॥

* * * *

दुर्भिक्ष राक्षस जहाँ सबको सताता।
लाखों मनुष्य यह प्लेग कृतान्त खाता॥
नाना विपत्ति-अभिभूत प्रजा तहाँ है।
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहाँ है॥

पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

उपाध्यायजीका जन्म आज़मगढ़ जिलेके निजामाबाद कसबेमें संवत् १९२२ में हुआ था। आप सनाढ्य ब्राह्मण हैं। हिन्दीकी नार्मल परीक्षा आप पास हैं। उर्दू, फारसी और संस्कृतपर भी आपका पूरा अधिकार है।

बाबा सुमेरसिंह नामके प्रसिद्ध काव्यकला विशारदसे आपने कविता करना सीखा। अबतक आप उनकी पूजा करते हैं। कविताका चस्का आपको लग ही चुका था कि इतनेमें कानून-गोईकी परीक्षा देकर और उसमें उत्तीर्ण होकर बहुत कालतक आप सदर कानूनगोईके उच्च ओहदे तक पहुंचे। सरकारी नौकरीसे पेन्शन लेनेके बाद आप काशी-विश्व-विद्यालयमें अध्यापक हुए। आजकल आप वहीं प्रोफेसर हैं।

उपाध्यायजी ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनोंमें उत्तम कविता करते हैं। ब्रजभाषामें तो आप पुराने चाल-ढालके देख पड़ते हैं। किन्तु खड़ी बोलीमें इनका रूप निराला है।

खड़ी बोलीमें इनकी सर्वोत्तम कृति 'प्रिय प्रवास' है। यह महाकाव्य है। महाकाव्यके प्रायः सभी गुण इसमें मिलते हैं। किन्तु कहीं-कहीं भाषा क्लिष्ट हो गई है। संस्कृत छन्दोंका उचित स्थानपर प्रयोग किया गया है। भाषा विशेषरूपसे संस्कृतगर्भित है। अकेला प्रियप्रवास ही उपाध्यायजीको अमर बनानेके लिये पर्याप्त है। प्रियप्रवासमें यशोदा विलाप तो अपने ढंगका अनूठा है।

एक ओर तो आपने प्रियप्रवासमें उत्कृष्ट हिन्दी रखा है दूसरी ओर 'चोखे चौपदे' में बोलचालकी भाषाका प्रयोग किया है। 'पद्यप्रसून' में दोनों प्रकारकी भाषाओंका प्रयोग है। इससे जाना जाता है कि उपाध्यायजीका दोनों प्रकारकी भाषाओं—'संस्कृत गर्भित साहित्यिक तथा बोलचालकी भाषापर समान अधिकार

है। 'चोखे चौपदे' में मुहावरे भी प्रयोगमें लाए गये हैं। 'चुभते चौपदे' भी बोलचाल तथा मुहावरा मिश्रित भाषामें है। उदाहरणके लिये कुछ पद नीचे दिये जाते हैं—

यशोदा विलाप

(प्रिय प्रवाससे)

प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहां है।
दुःख-जल-निधि डूबीका सहारा कहां है॥
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूं।
वह हृदय हमारा प्राण प्यारा कहां है॥

आंखका आंसू

आंखका आंसू ढलकता देखकर।
जी तड़प करके हमारा रह गया॥
क्या गया मोती किसीका है बिखर!
या हुआ पैदा रतन कोई नया॥

लाला भगवान 'दीन'

दीनजीका जन्म फतहपुर जिलेके बरवट ग्राममें सं० १९७२ में हुआ था। ये जातिके कायस्थ थे। अभी कुछ ही समय पूर्व आपका गोलोक वास हुआ।

दीनजी अपने जीवनमें बहुत दिनतक स्कूल मास्टर और पत्र

सम्पादक रहे। आप काशीजी हीमें अधिक समयतक रहे। हिन्दू-विश्वविद्यालयके आप एक सुयोग्य प्रोफेसरके पदपर रहे।

युवावस्थाकी तरंगमें आप बृजभाषामें श्रृंगारिक कविता करते थे किन्तु बादमें आपकी मनोवृत्ति खड़ी बोलीकी ओर झुकी। खड़ी बोलीके पद उर्दू छन्दोंमें विशेष हैं। आपकी भाषामें उर्दू, फारसीका भी सम्मिश्रण है। खड़ी बोलीकी कवितायें प्रायः वीर रसहीमें हैं। वीर क्षत्राणी, वीर पंचरत्न और वीर बालक खड़ी बोलीकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। प्राचीन कवियों-की टीकायें भी आपने खूब की हैं। रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया, कवितावली और बिहारी सतसई पर आपने अच्छी टीकायें लिखी हैं। अलंकार सम्बन्धी पुस्तक 'अलंकार मंजूषा' अति प्रसिद्ध पुस्तक है। सम्मेलनोंमें हास्यरसकी अच्छी पुट आप देते थे। जनताको आकर्षण करना तो आपके लिये बाएं हाथ-का खेल था।

दीनजीके कुछ पद नीचे दिये जाते हैं--

ब्रज भाषा

एहो घनश्याम नित सींचिकै कृपाकी बारि,
कवित लताको सदा राखियो हरी हरी।
छाया करि आतप निवारियो कलेसनको,
मंदुधुनि करि उलहाइयो घरी घरी॥
राधे रूप विज्जु दरसाय हीन दुःख कोट,
सफल सफूल पत्र राखियो हरी भरी।

'दीन' कवि चातककी विनय अनसुनी करि,
एहो घनश्याम फिर सुनिहौ खरी खरी॥

खड़ी बोली

कहो तो आज कह दें आपकी आंखोंको क्या समझे।
सिता सिंदूर मृगमदयुक्त अद्भुत कुछ दवा समझे॥
अगर इसको न मानो तो बता दूं दूसरी उपमा।
सहित हाला हलाहल मिश्रिता सुन्दर सुधा समझे॥

* * * *

वीरोंकी सुमाताओंका यश जो नहीं गाता।
वह व्यर्थ सुकवि होनेका अभिमान जनाता॥
जो वीर सुयश गानेमें हैं ढील दिखाता।
वह देशके वीरत्वका है मान घटाता॥
दुनियामें सुकवि नाम सदा उसका रहैगा।
जो काव्यमें वीरोंकी सुभग कीर्ति कहैगा॥

बाबू मैथिली शरण गुप्त

आचार्य द्विवेदीजीके सर्वश्रेष्ठ शिष्य हिन्दी-जगत्में अपनी तथा गुरुकी यशलतिकाको अमर बनानेवाले, नवयुवकोंकी सोई हुई आत्माको जगानेवाले बाबू मैथिलीशरण गुप्तका जन्म सं० १९४३ में चिरगांव जिला झांसीमें हुआ था। आप जातिके सनातनी वैश्य हैं।

गुप्तजीने आचार्य द्विवेदीजीकी संरक्षतामें कविता करना शुरु किया। आचार्यजीकी कृपासे आज दिन गुप्तजीका स्थान खड़ी बोलीके अन्य कवियोंसे बहुत ऊंचा है। यों तो भारत-भारती और जयद्रथ वधके द्वारा आपको ख्याति काव्य जगतमें काफी हो चुकी थी किन्तु हाल हीमें प्रकाशित महाकाव्य 'साकेत' द्वारा तो आप अन्य कवियोंसे बहुत आगे बढ़ गये। साकेत अपने ढङ्गका निराला काव्य हैं। महाकाव्यके सभी लक्षण इसमें पाये जाते हैं। उर्मिलाका चरित्र तो कविने अनूठे ढङ्गसे वर्णन किया है। उर्मिलाका चरित्र पढ़ते जाइये फिर भी यही इच्छा रहती है कि एक बार और पढ़ें। इसकी भाषा बहुत ही शुद्ध, परिमार्जित और साथ ही साथ ललित और कलापूर्ण है। केवल साकेत आपको अमर करनेवाला है। इसे खड़ी बोलीका सर्व-श्रेष्ठ महाकाव्य कहनेमें कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी।

गुप्तजीकी रचनाओंमें देशप्रेम, जातिप्रेम, धर्मप्रेम, नारीप्रेम आदि आदर्श पाये जाते हैं। वीरांगना, किसान और भारत-भारती आदि इसके प्रमाण हैं। इनकी और भी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं—रंगमें भंग, पंचवटी, स्वदेश संगीत, विरहिणी व्रजांगना और यशोधरा आदि। 'मेघनाद वध' माइकेल मधुसूदनदत्तकी बंगला कविताका पद्यानुवाद है। किन्तु यह मूल ग्रन्थसे भी बढ़कर है।

गुप्तजीकी भाषा स्पष्ट, सरल और भावगम्य होती है। वर्तमान समयके अन्य कवियोंकी भांति इनकी भाषा दुरूह या जटिल नहीं होने पाई है। उदाहरणके लिये कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

भारत-भारतीसे

हत भाग्य हिन्दू जाति ! तेरा पूर्व दर्शन है कहां ?
वह शील, शुद्धाचार वैभव देख, अब क्या है यहां ?
क्या जान पड़ती वह कथा अब स्वप्नकीसी है नहीं ?
हम हों वही, पर पूर्व दर्शन दृष्टि आते हैं कहीं !!
बीती अनेक शताब्दियां पर हाय ! तू जागी नहीं।
यह कुम्भकर्णो नींद तूने तनिक भी त्यागी नहीं ॥
देखें कहीं पूर्वज हमारे स्वर्गसे आकर हमें—
आंसू बहावें शोकसे, इस वेषमें पाकर हमें !!

जयद्रथ वध

'हे तात ! हे मातुल ! जहां हो, है प्रणाम तुम्हें वहीं,
अभिमन्युका इस भांति मरना भूल मत जाना कहीं।'
कहता हुआ वह वीर यों रणभूमिमें फिर गिर पड़ा,
हो भङ्ग शृङ्ग सुमेरु गिरिका गिर पड़ा हो ज्यों बड़ा।

नीरव क्रान्ति

तेरे घरके द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊं मैं ?
सब द्वारोंपर भीड़ बड़ी है, कैसे भीतर जाऊं मैं ?
द्वारपाल भय दिखलाते हैं,
कुछ ही जन जाने पाते हैं,
शेष सभी धक्के खाते हैं,
कैसे घुसने पाऊं मैं ?
तेरे घरके द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊं मैं ?

ग्राम्य जीवन

अहा ! ग्राम्य जीवन भी क्या है,
क्यों न इसे सबका मन चाहे।
थोड़ेमें निर्वाह यहां है,
ऐसी सुविधा और कहां है ?
यहां शहरकी बात नहीं है,
अपनी अपनी घात नहीं है।
आडम्बरका नाम नहीं है,
अनाचारका काम नहीं है।

साकेतसे

प्रकृति, तू प्रियकी स्मृति-मूर्ति है,
जड़ित चेतनकी त्रुटि-पूर्ति है।
रख सजीव मुझे मनकी व्यथा,
कह सखी, कह, तू उनकी कथा।

साल रही सखि, मांकी
झांकी वह चित्रकूटकी मुझको।

बोलीं जब वे मुझसे—
"मिला न बन ही न गेह तुझको।"
प्रभुको निष्कासन मिला, मुझको कारागार।
मृत्यु-दण्ड अब तातको, राज्य तुझे धिक्कार॥

पं० माखनलाल चतुर्वेदी

चतुर्वेदीजीका जन्म सं० १६४५ में जिला होशंगाबादके बाबई ग्राममें हुआ था। आप जातिके गौड़ ब्राह्मण हैं। आप हिन्दीमें नार्मल पास हैं। आजकल खंडवामें कर्मवीरका संपादन करते हैं।

आप त्यागी जीव हैं। देशका प्रेम आपमें कूट-कूटकर भरा है। आपकी कवितायें राष्ट्रीय होती हैं। काव्य-जगतमें आप 'एक भारतीय आत्मा'के नामसे प्रसिद्ध हैं। आपकी भाषा साफ सुथरी होती हैं। भाव सरल तथा बोधगम्य होते हैं। आपकी कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं—

सूरज ! सावधान हो जावो, मातृभूमि ! तुम धरलो धीर।
पश्चिम ! तू भी शीघ्र सम्हल ले, नीति बदल बन जा गम्भीर॥
कर्म-क्षेत्रमें आते हैं अब, करनेको जननीका त्राण।
कई करोड़ दुखोंसे व्याकुल भारतके भावी विद्वान॥

क्यों पड़ी परतन्त्रता की बेड़ियां ?
दासताकी हाय हथकड़ियां पड़ीं॥
क्यों क्षुद्रताकी छाप छातीपर छपी ?
कण्ठ पर जंजीरकी लड़ियां पड़ीं॥

दास्य भावोंके हलाहलसे हरे !
मर रहा प्यारा हमारा देश क्यों ?
यह पिशाची उच्च शिक्षा सर्पिणी,
कर रही बर वीरता निःशेष क्यों ?

वह सुनो आकाश वाणी हो रही,
"नाश पाता जायगा तबतक विजय"
वीर ?-'ना' धार्मिक ? "नहीं" सत्कवि ?-"नहीं"
देशमें पैदा न हो जब तक हृदय ॥

'राष्ट्र-कवि' पं० माधव शुक्ल

बीसवीं शताब्दीके 'भूषण' पं० माधव शुक्लका जन्म संवत् १९३८ में प्रयागमें हुआ था। आपकी काव्य-प्रतिभा तो प्रखर है ही, साथ ही साथ आप एक कुशल नाटककार और सफल नाटकपात्र (Actor) हैं। आपकी कवितायें ओज और उत्साहसे भरी रहती हैं। चार, छः हजारकी भीड़में कविता सुनाकर जनताके प्रसुप्त हृदयको जागृत करना आपहीका काम है। आपकी प्रत्येक पंक्तिमें देशप्रेम झलकता रहता है। जैसे भूषणके विषयमें हम कहते हैं कि उनका श्रृंगार रससे वैर-सा था उसी प्रकार इस वीर कविका भी श्रृंगार रससे वैर दीख पड़ता है। वीर रसके आप अवतार हैं, ऐसा कहनेमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी। आपकी भाषा शुद्ध तथा परिमार्जित रहती है। लोगोंको प्रभावित करनेके लिये आप उर्दू, फारसीकी भी काफी पुट रखते हैं। जागृत-भारत और भारत-गीताञ्जलि आपकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं।

इस वीर कविकी स्मृति देशासमें सदा बनी रहेगी। प्रयागकी 'हिन्दी-नाट्य-समिति' के आपही प्रधान थे। आजकल

कलकत्तेकी 'नाट्य-परिषद' नामकी प्रसिद्ध संस्थाका श्रेय आपहीको है। नमूनेके तौरपर कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं —

खड़ा हुआ था तटके ऊपर चिन्तित खिन्न अधीर।
अधः पतन निज देख रहा था हो अति क्षीण शरीर॥
हृदय नदी आवेग पूर्ण बहकर नयनोंके द्वारा।
उसी सिन्धुमें लोट रही थी देकर अपनी धारा॥
मेरे उत्सुक हाथ बढ़े थे उस आशाकी ओर।
अस्ताचलने जिसे हमारी छीन लिया बरजोर॥

* * * *

तेरा सदा ऋणी हूं भारत तेरा ऋणी रहूंगा।
जबतक तेरी मर्म भेदिनी पीड़ा नहीं हरूंगा॥
अब तक स्वार्थ कुशिक्षामें हा! मन बन्दी था वीर।
बली समयसे हुई भ्रान्तिकी टूक-टूक जंजीर॥
अब मैं हुआ सचेत अभय हो निज कर्त्तव्य करूंगा।
तेरा दुःख हरूंगा प्यारे, पीछे नहीं हटूंगा॥

पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

'सनेही' जीका जन्म सं० १९४० में हुआ था। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। 'सनेहीजी' की जन्मभूमि उन्नाव जिलेमें है। आप नार्मल पास हैं किन्तु इनकी कविताका टक्कर लेनेवाले बहुत कम हैं।

आप आजकल कानपुरसे 'सुकवि' पत्रका संचालन करते हैं। इनका एक अलग स्कूल ही है। कानपुरमें आज

दिन जो वृहद् कविमण्डल दीख पड़ता है वह सनेहीजीके उद्योग-का ही फल है। हिन्दी पत्रोंमें 'सुकवि' ही एक ऐसा पत्र है जिसमें केवल कविता तथा कविता सम्बन्धी बातें छपती हैं। इसीसे 'सनेही' जीका कविता-प्रेम स्पष्ट मालूम होता है।

आपकी प्रारम्भिक कविताओंपर आचार्य द्विवेदीजी लट्टू होकर उन्हें 'सरस्वती' में स्थान देते थे। द्विवेदीजीकी संरक्षतामें आपकी भाषा खूब शुद्ध तथा परिमार्जित हुई। आपकी भाषा बहुत सरल और स्पष्ट होती है। आपकी कवितायें भावमयी और हृदयस्पर्शी होती हैं। देश प्रेमकी लहर सदा इनके हृदय-समुद्रमें लहराती रहती है। करुण रसकी धारा आपकी कविता-ओंमें बहती रहती है। प्रेमपचीसी, कुसुमाञ्जलि और कृषक-क्रन्दन इनकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। नमूना नीचे दिया जाता है—

तुम होगे सुकरात ज़हरके प्याले होंगे,
हाथोंमें हथकड़ी पदोंमें छाले होंगे।
ईसासे तुम और जानके लाले होंगे,
होगे तुम निश्चेष्ठ डस रहे काले होंगे।
होना मत व्याकुल कहीं, इस भव जनित विषादसे,
अपने आग्रह पर अटल रहना बस प्रह्लादसे।

* * * *

चित्तके चाव, चोचले मनके,
वह बिगड़ना घड़ी घड़ी बनके।
चैन था, नाम था न चिन्ताका,
थे दिवस और ही लड़कपनके।

श्रीजयशङ्कर 'प्रसाद'

वर्तमान हिन्दी साहित्यका ऐसा कौन विद्यार्थी होगा, जिसने 'प्रसाद' का नाम न सुना हो। आपका जन्म सं० १९४६ में काशीजीमें हुआ था। प्रसिद्ध सुंघनी साहु आपके पिता थे। साहित्य संसारमें आप 'प्रसाद' हीके नामसे सुप्रसिद्ध हैं।

यद्यपि आप गद्य, पद्य, नाटक, कहानी और उपन्यास आदि-के लेखक थे किन्तु नाटककारके रूपमें आप अधिक विख्यात थे। यद्यपि ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनोंपर आपका अधिकार था तो भी आप शुद्ध साहित्यिक तथा संस्कृत गर्भित खड़ी बोली हीके पक्षपाती और समर्थक थे। गद्यधाराका वर्णन करते हुए दिखाया जा चुका है कि आप कितने उत्तम मौलिक नाटककार हैं। कविके रूपमें हम इन्हें नाटकोंमें तथा इनकी रचित अन्य काव्य पुस्तकोंमें और फुटकल रचनाओंमें पाते हैं। आप एक भावुक कवि थे। आपकी कविता भावुकतासे ओत-प्रोत है। कहीं-कहीं आपके भाव इतने सूक्ष्म हो जाते हैं कि लोग आपको छायावादी या रहस्यवादी कवि कहने लगते हैं। भाषामें शब्दोंका चुनाव, उनका ठीक स्थानपर रखना आदि आपके विशेष गुण हैं। वर्त-मान कालके युवक कवियोंमें आप खूब प्रसिद्ध हैं। 'काननकुसुम' आपकी कविताओंका संग्रह है। 'प्रेमपथिक' और 'महाराणा-का महत्त्व' भी आपकी काव्य पुस्तकें हैं।

इनकी कुछ रचनायें नीचे दी जाती हैं —

आंसू

ये सब स्फुलिङ्ग हैं मेरी, उस ज्वालामयी जलनके,
कुछ शेष चिह्न हैं केवल, मेरे उस महा मिलनके।

अव्यवस्थित

विश्वके नीरव निर्जनमें,
जब करता हूं केवल, चंचल।
मानसको कुछ शान्त,
होती है कुछ ऐसी हलचल।
तब होता है भ्रान्त,
भटकता है भ्रमके वनमें,
विश्वके कुसुमित काननमें।

अजातशत्रु (नाटक) की कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं जिसमें भ्रम वश लोग छायावाद या रहस्यवादकी बू पाते हैं—

तड़प रही है कहीं कोकिला,
कहीं पपीहा पुकारता है।
यही विरुद क्या तुम्हें सुहाता ?
कि नील नीरद सदय नहीं है।
चंचल अङ्गुली तनिक ठहर जा,
क्षण भर अनुकम्पासे भर जा।

— —

ठाकुर गोपाल शरण सिंह

आचार्य द्विवेदीजीके द्वारा प्रोत्साहित व्यक्तियोंमें ठाकुर गोपाल शरणसिंहका भी नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपका जन्म रीवां राज्यान्तर्गत नई गढ़ीके ताल्लुकेदारके घरमें सं० १९४८ में हुआ। इस समय आप स्वयं रियासतके मालिक हैं।

आप एक उच्च कोटिके कवि हैं। आपकी भाषा सरस और सरल होती है। बोलचालकी भाषामें आप ब्रजभाषाके टक्करकी कविता करते हैं। आपकी 'माधवी' अति प्रसिद्ध पुस्तक है। हिन्दी प्रचारके लिये आप जी-जानसे प्रयत्न करते हैं। कवित्त रचनामें आपको रत्नाकरकी तरह कमाल हासिल है। इनकी कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं—

अङ्कित ब्रजेशकी छटा है सब ठौर यहां।
लता-द्रुम बल्लियोंमें और फूल फूल में।
भूमि ही यहांकी सब काल बतला सी रही॥
ग्वाल बाल संग वह लोटे इस धूलमें।
कल-कल रूपमें है वंशी रव गूंज रहा॥
जाके सुनो कलित कलिन्द जाके कूल में।
ग्राम ग्राम धाम धाममें हैं घनश्याम यहां॥
किन्तु वे छिपे हैं मंजु मानस-दुकूल में।

आंख है बेचैन रहती हर घड़ी,
आंसुओंकी है लगी रहती झड़ी।

यत्न कर थक गए निकली नहीं,
हाय ! कैसी किर किरी इसमें पड़ी ?
बीत गईं सदियां न सुधरी हमारी दशा,
नदियां दृगोंसे अभी और बहनेको हैं।
जिनको न आता खड़े होना निज पैरोंपर ,
इस दुनियामें वे न और रहनेको हैं।
दीन बलहीनकी न कुशल है यहां अब,
वे तो चुप चाप घोर दुख सहनेको हैं।
हिन्द और हिन्दीका जो हित करते हैं नहीं,
हिन्दू वे नहीं हैं हिन्दू वरन कहनेको हैं ॥

श्रीसियारामशरण गुप्त

सियाराम शरणजी महाकवि बाबू मैथिली शरणजी गुप्तके कनिष्ठ भ्राता हैं। आपका जन्म सं० १६५२ में हुआ था। आपकी रचनाओंके विषयमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आपने सदासे पूज्य गुप्तजीके साथ रहनेके कारण काव्य-कलाके तत्वको समझ लिया है। आपकी रचनामें करुणरस प्रधान रूपसे दिखाई पड़ता है। संसारकी परिस्थितियोंका भी आपने खूब मनन किया है। प्रकृतिकी हिलोरमें आप भी कभी-कभी हिलोरे खाते देखे जाते हैं। चित्र चित्रणमें सचमुच आपको कमाल हासिल है। आजतक इनकी कई प्रसिद्ध पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। विषाद, दूर्वादल, मौर्यविजय आदि अति प्रसिद्ध हैं। इनकी भाषा शुद्ध और भावपूर्ण होती है। कहीं-कहीं शब्दोंके

चुनावमें आपमें भी 'निरालापन' की झलक दिखाई पड़ती है। नमूनेके तौरपर आपकी कुछ मनोहारिणी रचनायें नीचे दी जाती हैं—

स्मृति

चली गई हे शुभे! कहां तू हमसे कितनी दूर;
किस अभाग्यकी, किस अदृष्टको दृष्टि हुई यह क्रूर;
बहुत दूर तू चली गई बस, है इतना ही ज्ञात;
पहुंच नहीं सकती है मुझ तक तेरी कोई बात।

बाढ़

पानीमें बहती हुई डाल पर,
देह भार डाल कर,
दाबे हुए बालकको कांखमें,
प्लावन प्रवाह भर आंखमें,
बहती अभागी एक माता यह;
छूट गया एकाएक हाय रे! बच्चा वह;
डाल छोड़ जननी भी जाती है,
प्राणके भी प्राणका पता न किन्तु पाती है।

यमुना नदीकी बाढ़का कितना उत्तम, सच्चा और हृदय-द्रावक वर्णन है। इसमें कविने प्रत्यक्ष घटनाका भावयुक्त भाषामें जो वर्णन किया है वह सचमुच स्तुत्य है। इसका अनुभव तो वे ही लोग कर सकते हैं जिन्हें कभी ऐसी दुर्घटना देखनेका अवसर मिला हो।

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

'यथा नाम तथा गुणः' की लोकोक्ति यदि वास्तवमें किसीपर चरितार्थ होती है तो वह हैं पं० सूर्यकान्तजी त्रिपाठी। इनका जन्म बंगाल प्रान्तके मेदिनीपुर जिलेमें संवत् १९५५ में हुआ था। किन्तु आपके पिताकी जन्म भूमि उन्नाव जिलेमें थी। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं।

आप वर्तमान हिन्दी जगतमें अति प्रसिद्ध हैं। आपका ढङ्ग निराला है। इनको देखने हीसे मालूम होता है कि ये मस्ताने कवि हैं। इनकी कविताओंमें बहुत कुछ दार्शनिक भाव रहते हैं। इसीलिये लोग इन्हें छायावादी या रहस्यवादी कवि कहते हैं। इनकी भाषा संस्कृत गर्भित होती है। भावोंमें हद दर्जेकी सूक्ष्मता रहती है। आपकी कवितायें प्रायः पत्रिकाओंमें भी प्रकाशित होती हैं। आप कहानी भी सुन्दर लिखते हैं।

'निराला' जीका एक निराला 'स्कूल' है। इनकी कवितायें अतुकान्त होती हैं। आजकल नवयुवकोंमें इनके प्रति काफी श्रद्धा पैदा हो रही है।

इतना ज़रूर मानना पड़ेगा कि इनकी कवितायें साधारण लोगोंकी समझके बाहर हैं। इनके भावोंको समझनेके लिये कुछ दार्शनिक ज्ञानका होना आवश्यक है। इनकी प्रसिद्ध पुस्तकें 'परिमल' और 'अनामिका' हैं। आपका बंगलापर भी पूरा अधिकार है। आपने कवीन्द्र रवीन्द्रकी कविताओंका संग्रह किया है, और उसपर उत्तम ढंगसे समालोचना भी लिखी है।

निराला जीकी कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं—

परिमलसे

माया

तू किसीके चित्तकी है कालिमा
या किसी कमनीयकी कमनीयता ?
या किसी दुःख दीनकी है आह तू
या किसी तरुकी तरुण बनिता-लता ?

अनामिका से

मलिन मानसमें तेरी छाप,
छा गई श्याम दृगोंपर घटा।
विरहके बादल घेरे घोर
चमकती स्मृति बिजलीकी छटा।

पं० सुमित्रानन्दन पंत

सरस्वतीके इस लाड़िलेका जन्म संवत् १९५७ में अलमोड़ा जिलेमें हुआ। 'मास्टर व्याय' कीट्सकी भांति इन्होंने भी बी० ए० एम० ए० के चक्करमें अपनेको न डाला। हृदयकी प्रबल भावुकताने इन्हें एफ० ए० क्लास हीसे खींचकर साहित्य-सेवा-की ओर लगा दिया।

यों तो आपकी फुटकल रचनायें पत्रिकाओंमें प्रकाशित होती ही हैं किन्तु इसके साथ-साथ आपकी तीन पुस्तकें 'पल्लव' 'वीणा' और 'गुंजन' साहित्यकी अमरनिधि हैं। विशेषकर 'पल्लव' तो

इन्हें अमर करनेके लिये पर्याप्त है। आपकी भाषा शुद्ध, परिमार्जित और साहित्यिक खड़ी बोलीमें है। आप खड़ी बोलीके जबर्दस्त हिमायती हैं। खड़ी बोलीके प्रेममें पागल होकर कभी आप ब्रजभाषाको कड़ी फटकार भी सुना देते हैं। उच्चकोटिके कवि होनेके कारण कभी-कभी आप व्याकरणके बाहर हो जाते हैं। यदि किसी शब्दका भाव स्त्रीलिङ्गमें अच्छा उतरता है तो बिना हिचकिचाहटके आप स्त्री लिङ्गमें उसका प्रयोग कर लेते हैं। शब्द-चयन तो आपका उच्च कोटिका है। भावोंकी सूक्ष्मता 'पल्ले' दर्जेकी है। प्रकृतिकी मनोहर और कोमल छटा देख आप उसीमें तल्लीन हो जाते हैं। वास्तवमें पंतजीके सदृश हिन्दीमें आज दिन कोई भी भावुक कवि नहीं है। इनकी तुलना पाश्चात्य कवि कीट्स और शेलीसे की जा सकती है। कोई समय आवेगा जब पंतजी हिन्दी साहित्यके प्रकाशमान सूर्य होंगे। ईश्वर इन्हें चिरायु करे। हिन्दी साहित्यका मस्तक इनके द्वारा बहुत ऊंचा उठेगा। नमूनेके तौरपर कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं—

आंसू

कल्पनामें है कसकती वेदना,
अश्रुमें जीता सिसकता गान है।
शून्य आहोंमें सुरीले छन्द हैं,
मधुर लयका क्या कहीं अवसान है ?

वियोगी होगा पहला कवि,
आहसे उपजा होगा गान।
उमड़कर आंखोंसे चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान।

*　　*　　*　　*

अरी सलिलकी लोल हिलोर,
यह कैसा स्वर्गीय हुलास।
सरिताकी चंचल दृग कोर,
यह जगको अविदित उल्लास।
आ मेरे मृदु अंग झकोर,
नयनोंमें निज छविको बोर।
मेरे उरमें भर यह रोर।

—:०:—

श्रीरामकुमार वर्मा

आपका जन्म मध्यप्रान्तके सागर जिलेमें संवत् १९६२ में हुआ था। आप कायस्थ कुलोद्भव हैं। इस समय आप प्रयाग विश्व-विद्यालयमें हिन्दीके प्रोफेसर हैं। इस छोटी सी अवस्थामें प्रोफेसर पदपर सुशोभित होना ही इनकी प्रखर प्रतिभा और घोर पाण्डित्यका प्रमाण है। काव्य जगतमें आप एक प्रकाशमान नक्षत्र हैं। यदि हम वर्तमान काव्याकाशमें सात ऋषियों-को ढूंढ़ें तो 'कुमार' जी उनमेंसे एक मुख्य स्थानको अवश्य सुशोभित करते मिलेंगे।

इनकी कविताके विषयमें क्या कहना है। पांडित्यपूर्ण कोमल भाव,किंतु नावकके तीर, सुन्दर और परिमार्जित भाषासे सुशोभित रहते हैं। कुमारजी उस कवि मण्डलीमें हैं, जिसमें प्रायः आजकल सभी नवयुवक दिखाई पड़ते हैं। प्रकृतिके सुन्दर और सरस रूपके आप 'आशिक' हैं। आप 'लकीरके फकीर' नहीं हैं। आप स्वतन्त्र हैं और कविमात्रको स्वतन्त्र और बन्धन-मुक्त समझते हैं। जहाँ एक ओर इनमें हम प्रेमका राग पाते हैं दूसरी ओर देश और जातिका करुण गान पाते हैं। यही इनकी एक विशेषता है जो अन्य कवियोंमें नहीं पाई जाती। करुण-रसकी यह पतली धार इनके कवि-जीवनको और भी परिष्कृत कर देती है। कुछ लोग इन्हें रहस्यवादी कवि मानते हैं।

इनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'अभिशाप' 'चित्तौड़की चिता', और अंजलि' प्रसिद्ध हैं। 'साहित्य-समालोचना' और कबीरका रहस्यवाद नामकी समालोचनात्मक पुस्तकें हैं। इनकी कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं—

अंजलिसे

अरे निर्जन वनके निर्मल निर्झर,

इस एकान्त प्रान्त-प्रांगणमें—

किसे सुनाते सुमधर स्वर ?

अरे निर्जन वनके निर्मल निर्झर।

चितौड़की चितासे

हाय ! कैसे उजड़ा उद्यान,
हुआ अन्तर्हित कोकिल गान।
हुआ कब सौरभका अवसान,
कहां छिप गया मानिनी मान।

फुटकल

करुणाका गहरा गुंजार,
जिसमें गर्वित विश्व पिघलकर बनता है आंसूकी धार।
विश्व सांसका नव निर्झर प्रिय,
मधुप्रिय कोकिलका मधुस्वर प्रिय।
मेरे जीवनके मधुवनमें यह है मधुकणका शृंगार॥
सावन शिशु घन अङ्कित अम्बर,
रिमझिम-रिमझिम है पुलकित स्वर।
कितने प्राणोंकी स्वातीमें यह मोती-सा उज्वल प्यार।
करुणाका गहरा गुंजार।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

श्रीमतीका जन्म सं० १९६१ में प्रयागमें हुआ। आपका विवाह सी० पी० के प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्त्ता ठा० लक्ष्मणसिंह चौहान बी० ए०, एल० एल० बी० के साथ हुआ है। आप भी जेल यात्रा कर चुकी हैं।

वर्तमान समयमें कवियत्रियोंमें आपका स्थान सबसे ऊंचा है। आपकी भाषा शुद्ध परिमार्जित खड़ी बोली है।

आपके भाव भी उत्तम दर्जेके होते हैं। आपकी कविताओं-में देश-प्रेम भरा रहता है। इनकी कविताओंका संग्रह 'मुकुल' के नामसे प्रकाशित है। जिससे दो पद नीचे दिये जाते हैं—

लगे जाने हृदय धनसे,
कहा मैंने कि मत जाओ।
कहीं हो प्रेममें पागल,
न पथ ही में मचल जाओ॥
तेरा स्मारक तूही होगी,
तू खुद अमिट निशानी थी।
बुंदेले हरबोलोंके मुंह,
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मरदानी वह तो,
झांसी वाली रानी थी।

समयानुकूल होनेके कारण तथा हमारी प्राचीन आर्य-महिलाका गौरव दिखानेके कारण एक 'झांसीवाली रानी' नामक कविता श्रीमतीजीको हिन्दी-साहित्यमें अमर बनानेके लिये पर्याप्त है। ऐसी ओजभरी कविता बिरले ही हृदयसे प्रस्फुटित होती है।

श्रीमहादेवी वर्मा एम० ए०

श्रीमती वर्माका जन्म प्रयागमें हुआ। अभी गत वर्ष आप एम० ए० हुई। शील, करुणा, दया इनके स्वभावजन्य गुण हैं।

काव्य जगतमें आपका स्थान बहुत ऊंचा है। इनकी कविताओं-में करुण रसकी एक अविरल धारा बहती है। पढ़नेसे पता चलता है कि संसारमें इन्हें करुण रस ही सबसे अधिक प्रिय है। इनका निजी विचार भी है कि दुःख ही सम्पूर्ण जगतको एक सूत्रमें बांधनेकी क्षमता रखता है। जहां कहीं देखिये, आपके दो बूंद आंसू टपक रहे हैं। भाषा इनकी शुद्ध और परिमार्जित होती है। करुण भावके कारण इनकी लाइनोंमें एक विचित्र आकर्षण है। इनकी 'नीहार' और 'रश्मि' दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। पत्र-पत्रिकाओंमें भी प्रायः आपकी कवितायें प्रकाशित होती हैं। नमूनेके तौर पर कुछ लाइनें नीचे दी जाती हैं :—

नीहार से

सुनायी किसने पलमें आन
कानमें मधुमय मोहक तान ?
तरीको ले जाओ मझधार
डूबकर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही है कर्णाधार,
वही पहुंचा देगा उस पार।

रश्मिसे (दुविधा)

तेरे असीम आंगनकी,
देखूं जगमग दीवाली,
या इस निर्जन कोनेके
बुझते दीपक को देखूं !

इस समय कई एक पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक बदल गये हैं, जिनकी सूची दी जा रही है।

पत्र पत्रिकाएं—	सम्पादक—
माधुरी	रूपनारायण पाण्डेय
सुधा	दुलारेलाल भार्गव श्री सावित्री
चांद	श्री सत्य भक्त
सरस्वती	देवीदत्त शुक्ल उमेशचन्द्र मिश्र
वीणा	कालिकाप्रसाद दीक्षित
विश्वमित्र	शिवदेव उपाध्याय 'सतीश'
हंस	श्रीपतिराय
जागरण	बन्द है
विशालभारत	श्रीराम शर्मा
कल्याण	हनुमानप्रसाद पोद्दार
कर्मवीर	माखनलाल चतुर्वेदी
प्रताप	हरिशंकर विद्यार्थी
भारत	राधेश्याम शर्मा
हिन्दुस्तानी एकेडेमी	रामचन्द्र टंडन एम० ए० एल० एल० बी०
नागरी प्रचारिणी	ब्रजरत्नदास बी० ए०, एल० एल० बी०
अभ्युदय	कृष्णकान्त मालवीय एम० एल० ए०
हरिजन सेवक	प्यारेलाल